सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

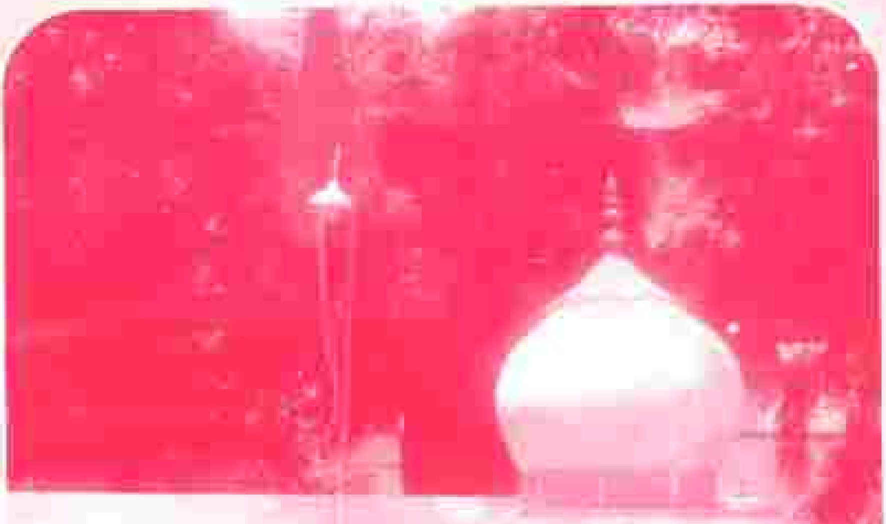

वर्ष : 44, अंक : 11-12
फरवरी-मार्च 2012

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति॥

(चाणक्य)

अर्थात् जब तक शरीर निरोग व स्वस्थ है और मृत्यु दूर है तब तक अपने आत्म कल्याण का उपाय कर लेना चाहिए। क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

◆ ◆ ◆

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

(श्री मद्भगवद् गीता 6/6)

अर्थात् जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह स्वयं ही मित्र है जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह स्वयं ही शत्रु जैसा व्यवहार करता है।

◆ ◆ ◆

शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत॥

(यजुर्वेद)

मनुष्यों को चाहिए कि वे उचित पथ्य, आहार और नियमों का विधिवत्पालन कर शरीर को रोग रहित रखें अर्थात् स्वास्थ्य की रक्षा करें, क्योंकि स्वस्थ रहे बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

◆ ◆ ◆

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शंकितः।
नोद्यमे विरमेत्त्वपि हेलामीर्ष्यांपरफले न तु॥

(भावप्रकाश 5/258)

अर्थात् अकेले सुख का भोग न करके, दूसरों को सुख भोग कराते हुए स्वयं सुख भोगना चाहिए। सबके ऊपर विश्वास या संदेह न करके सोच समझकर उचित व्यवहार करना चाहिए। उद्योग करना न छोड़ें और दूसरे की उन्नति और सम्पन्नता से ईर्ष्या न करें।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 11-12

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसारहेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि।।
यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः।
ध्यायन्ति चाखिलधियोऽमितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि।।

जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत् के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मों के अनुसार सुख-दुःख देने वाले हैं, जो संसार की उत्पत्ति के हेतु तथा उसका अन्तकाल भी करने वाले हैं, सबको शरण देने वाले उन्हीं भगवान् शङ्कर की मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगिजन, भक्ति से मन को एकाग्र रखने वाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शङ्कर की मैं शरण लेता हूँ।

फरवरी-मार्च 2012

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	**विशेष लेख** – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	**सम्पादकीय**	11
3.	**आत्म चिन्तन** – डॉ [illegible]दत्त चतुर्वेदी	13
4.	**योगेश्वर ततों मे दर्शयात्मानमव्ययम्** – पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय	15
5.	**गोमाता** – डॉ. जगदीश शरण	18
6.	**योग ही दिव्य अविनाशी जीवन है** – अमित कुमार मिश्र	19
7.	**विहार प्रान्त में श्री सिद्धयोग का बीजारोपण** – केशवदेव उपाध्याय	24
8.	**योगआसन** – ताड़ासन	32
9.	**श्री गीतामृत पदावली**	34
10.	**बार–बार बलिहारी** – जगदीश राए बंसल	37
11.	**स्वस्थ रहने की रामबाण दवा**	39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

• *हमारा विशेष लेख*

निःश्रेयस सिद्धि की साधना

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गत वर्ष सिद्धयोग के इस स्तम्भ में हमने 'योग की प्रतीति' पर कई लेख लिखे, जिनमें भी प्रत्यय से योगज्ञान का प्राप्त होना, श्री सद्गुरुदेव के शक्तिपात के द्वारा सद्यः प्रतीति होना, श्रद्धा वीर्यस्मृति समाधि आदि के द्वारा योगध्यान का प्राप्त होना एवं ईश्वर प्रणिधान करने से अभिमत वस्तु, समाधि का प्राप्त होना आदि–आदि विषय विस्तार से खोल करके स्पष्टीकरण के साथ प्रकाशित करा दिये गये हैं। आशा है सभी साधकों ने उनको ध्यान पूर्वक पढ़ा होगा और समझा होगा कि ईश्वर–प्रणिधान के द्वारा आवर्जित किया ईश्वर साधकों को अपनी कृपा पूर्वक समाधि प्रदान करता है। यह भी एक प्रकार का अनादि कालीन महासिद्ध ईश्वर का शक्तिपात ही है। इस प्रकार के इन सभी विषयों का वर्णन कर देने के बाद श्री पतंजलि महाराज ने अपने 'योगदर्शन' में और भी कुछ अनुपम साधनों का वर्णन किया है जिनका अवलम्ब लेने वाले साधकों को अवश्य ही आत्मानुभूति का सीधा मार्ग मिलता है और वे साधक मन की एकाग्रता के कारण शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्षीभूत परम श्रेय को प्राप्त कर लेते हैं। इनमें से सर्व प्रथम प्राणायाम है।

प्राणायाम की अमर साधना

भगवान पतंजलि देव लिखते हैं कि –

प्रच्छर्दन विधारणभ्यां वा प्राणस्य।

अर्थात् प्राण को बाहर निकाल करके कुम्भक बढ़ाने से एवं आभ्यन्तर कुम्भक बढ़ाने से अनायास ही मन की एकाग्रता का अनुपम लाभ होता है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी निम्नांकित पंक्ति लिखते हैं –

कोष्ठयस्य वायोर्नासिका पुटाभ्यां प्रयत्न विशेषाद् वमनं प्रच्छर्दनम्, विधारणम् – प्राणायामः, ताभ्यां वा मनसः स्थिति सम्पादयेत्।।

अर्थात् शरीर के भीतर की वायु को बाहर फेंकने को प्रच्छर्दन कहते हैं और भीतर को खींचने को विधारण कहते हैं। इन दोनों को करने से मन की एकाग्रता का लाभ होता है। श्री मनु जी महाराज अपनी मनुस्मृति में लिखते हैं –

दह्यते हि ध्यायमानानां धातूनां यथा मला। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते मला प्राणस्य निग्रहात्।।

अर्थात् जिस प्रकार से सोना, चाँदी आदि धातुओं के मल को अग्नि में तपा कर दूर कर दिया जाता है इसी प्रकार से इन्द्रियों के मल प्राणायाम से दूर हो जाते हैं।

प्राणायाम भी एक प्रकार का तप है। तप का लक्षण पिछले लेखों में बता दिया गया है "द्वन्द सहनं तपः" सर्दी गर्मी भूख प्यास के जोड़े को सहना तप कहलाता है। प्राणायाम करने में भी स्वाभाविक द्वन्द सहन होता है क्योंकि प्राण की साधारण गति चलते रहने से सुख मिलता है और प्राण की गति को रोक दिया जाय तो मन तत्सर्ग कष्ट का अनुभव करता है, इसी का नाम द्वन्द सहन है। सर्दी–गर्मी आदि में भी सर्दी को सहन एवं गर्मी को सहन करना, इसी का नाम द्वन्द–सहन है। भगवान पतंजलि देव तप का फल बतलाते हुए योग दर्शन में लिखते हैं –

कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।।

इस सूत्र पर व्यास जी का भाष्य –

निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्धयावरणमलं तदावरण मलापगमात् काय सिद्धिः अणिमाद्या, तथेन्द्रिय सिद्धि = दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति।

अर्थात् बराबर किया हुआ तप अशुद्धि के आवरण को खत्म कर देता है। उस आवरण के समाप्त हो जाने से अणिमादिक कायसिद्धि और इसी प्रकार ऐन्द्रिय सिद्धि दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि सिद्धि उपलब्ध होती है। यह तप का ही महान प्रभाव है और योग में प्राणायाम से बढ़कर किसी दूसरे तप को नहीं माना है। जहाँ–जहाँ मनुष्य तप के प्रभाव से अपनी इन्द्रियों पर कन्ट्रोल करता है उसी प्रकार प्राणायाम से प्राण और मन पर कन्ट्रोल करता है। प्राण और मन का बिल्कुल अभिन्न सम्बन्ध है।

यत्र प्राणोलीयते तत्र मनो लीयते।

अर्थात् जहाँ पर प्राण लय हो जाता है वहाँ मन लय हो जाता है और इसी प्रकार राजयोग की साधना द्वारा –

यत्र मनो लीयते तत्र प्राणो लीयते।

अर्थात् जहाँ मन लय होता है वहाँ प्राण भी लय हो जाता है। प्राण और मन का बिल्कुल अभिन्न सम्बन्ध है। जिसने प्राण पर कण्ट्रोल कर लिया समझ लेना चाहिए कि उसने मन पर भी कण्ट्रोल कर लिया इन दोनों में किसी एक की साधना करने से दूसरे की साधना स्वाभाविक ही हो जाती है। इसलिए जो मन के ऊपर नियन्त्रण करना चाहते हैं उनके लिए प्राणायाम करना एक अमूल्य एवं अनुपम साधन है। इस उत्तम साधन को करने वाला व्यक्ति शनैः शनैः अवश्य ही निःश्रेयस सिद्धि को पा लेता है। प्राणायाम हठ की साधना है। इसलिए साधक को चाहिए कि वह प्राणायाम के अनुकूल शुद्ध वातावरण में ही इस साधना को करे। प्राणायाम की साधना के लिए हठयोग के परम उपदेशक हठयोग प्रदीपिका के रचयिता योगी आत्माराम ने हठाभ्यासी योगी के लिए एक सुन्दर मठ निर्माण का आदेश दिया है। वह मठ ही प्राणायाम के अभ्यासी के

लिए उपयुक्त साधना–स्थली हो सकता है।

श्री आत्माराम जी ने मठ निर्माण का उपदेश इस प्रकार किया है –

अल्प द्वारमरन्ध्रगर्तविवरं नात्युच्चनीचायतम्।

सम्यग्गोमय सान्द्र लिप्त, ममलं निःशेष जन्तूज्झिम्।।

बाह्ये मण्डप वेदि कूप, रुचिरं प्राकार संवेष्टितम्।

प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः।।

अर्थात् योगाभ्यासी के लिए एक ऐसे सुन्दर मठ की आवश्यकता है, जिसका छोटा दरवाजा हो (और वह उत्तराभिमुख होना चाहिए) जिसकी जमीन समतल हो। किसी प्रकार के बिल वगैरह न हों ऊँचे–नीचे गड्ढे न बने हों बहुत ऊँचा न हो और बहुत नीचा भी न हो गोबर से सुन्दर अच्छी प्रकार लेपन किया हो, जिसमें किसी प्रकार के मच्छर तथा जीव जन्तु न हों। उसके सामने सुन्दर मण्डप वेदि आदि बनी हुई हो। एक ओर सुन्दर मीठे जल का कुँआ हो और जिसकी चहार दीवारी बनी हुई हो। इस प्रकार का सुन्दर मठ हठाभ्यासियों के लिए उपयुक्त साधना स्थल रहता है। हठाभ्यासी को चाहिए प्राणायाम का अभ्यास करने से पहले प्राणायाम से सम्बन्ध रखने वाले तीन बन्धों के अभ्यास पहले से कर लें, ताकि अभ्यास काल में इनका उपयोग किया जा सके। उन बन्धों का वर्णन 'हठयोग प्रदीपिका' में इस प्रकार किया है –

<u>मूलबन्ध</u>

पार्ष्णिभागेन संपीड्य, **योनिमाकुंचयेद्गुदम्।**

अपानमूर्ध्वमाकृष्य, मूत्रबन्धोऽभिधीयते।।

अर्थात् दोनों पैरों की एड़ी अर्थात् टकने से सीमनी को दबाये और उस भाग का आकुंचन करे, अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण करे, इसी का नाम मूल बन्ध है। मूलबन लगा करके यदि उड्डियान बन्ध लगाया जाय तो अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण अवश्य–अवश्य हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपने मुखारविन्द से इन्हीं भावों को स्पष्ट रूप से कहा है।

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथा परे।

प्राणापान गती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।

अर्थात् अपान के अन्दर प्राण का हवन और प्राण के अन्दर अपान का, इस प्रकार से प्राणापान गतिरोधन करने से योगियों को प्राणायाम सिद्ध होता है। जिस समय योगी पवनाभ्यास का हठी मूलबन्ध लगा करके उड्डियान से प्राण का ऊर्ध्वाकर्षण करता है तो वह अपान हृदय देश में रहने वाले प्राण तक आकर्षित हो जाता है और उसी प्रकार ऊपर से जलन्धर बन्ध लगा देने से प्राण की गति अपान की ओर बढ़ जाती है, इस प्रकार प्राणापान की एकता से योगी लोग प्राणायाम परायण रहते हैं।

उड्डियान की विधि

विधि बतलाने से पहले योगाचार्य आत्माराम योगी उड्डियान शब्द का अर्थ बतलाते हुए कहते हैं –

बद्धो येन सुषुम्नायाम् प्राणस्तूड्डीयते यतः।

तस्मादुड्डीयनाख्योऽयं योगिभिः समुदाहृतम्।।

उड्डीनं कुरुते यस्मादविश्रांतं महाखगः।

उड्डीयानं तदेव स्यात्तत्र बंधोऽभिधीयते।।

अर्थात् जिसके कारण से सुषुम्णा के अन्दर प्राण उड्डन करता है इसलिए इस बंध का नाम उड्डियान कहा गया है। जिस प्रकार से एक बड़ा भारी पक्षी आकाश में उड़ा करता है इसी प्रकार से प्राण देह रूपी आकाश में इस बंध के द्वारा गति करता है इसलिए इस बंध का नाम उड्डियान बंध है।

उड्डियान बंध की विधि

उदरे पश्चिमं तानं, नाभेरूर्ध्वं च कारयेत्।

उड्डीयानो ह्यसौ बंधो मृत्युमातंगकेसरी।।

अर्थात् पेट में नाभि से ऊपर के हिस्से में पश्चिम उत्तान करे अर्थात् (नाभि मण्डल को प्राण के ऊर्ध्वाकर्षण के द्वारा तनाव दे) इसी का नाम उड्डियान बन्ध है। जिस प्रकार से हाथी के ऊपर बबर शेर हमला कर देता है और उसको गिरा देता है इसी प्रकार यह बंध मृत्यु पर जय प्राप्त कराने के लिए अनुपम है।

उड्डीयान तु सहजं गुरुणा कथितं सदा।

अभ्यसेत्सततं यस्तु, वृद्धोऽपि तरुणायते।।

नाभेरूर्ध्वमधश्चापि, तानं कुर्यात्प्रयत्नतः।

षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः।।

सर्वेषामेव बन्धानामुत्तमो ह्युड्डियानकः।

उड्डियाने दृढे बन्धे, मुक्तिः स्वभाविकी भवेत्।।

श्री गुरुदेव ने इस उड्डियान बंध को साधारण रूप से बतला दिया किन्तु फल इसका महान है। जो साधक इसका दृढ़तर अभ्यास करता है वह चाहे वृद्ध भी है तो भी अवश्य ही तरुणता को पा जाता है। जो साधक नाभि के ऊर्ध्व और अधोभाग को पश्चिम की ओर उत्तान करता है (पीठ की ओर) तनाव देता है वह छः महीने के अभ्यास से बिना किसी संशय के अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है। यह उड्डियान बन्ध सभी बन्धों में उत्तम है। इस बन्ध का अभ्यास हो जाने के बाद साधक अवश्य ही मुक्ति पा जाता है। उड्डियान बन्ध कर लेने के बाद साधक को अवश्य ही जालन्धर बन्ध का अभ्यास करना चाहिए, उसकी विधि इस प्रकार है –

जालन्धर बन्ध की विधि

कंठमाकुंच्य हृदये, स्थापयेच्चिबुक दृढं।
बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः।।
बध्नाति हि शिराजाल-मधोगामि नभो जलम्।
ततो जालंधरो बन्धः कंठ दुःखौघनाशनः।
जालंधरे कृते बंधे, कंठ संकोच लक्षणे।
न पीयूष पतत्यग्नौ, न च वायुः प्रकुप्यति।।
कंठ संकोचनेनैव, द्वैनाड्यौ स्तम्भयेद्दृढम्।
मध्य चक्रमिदं ज्ञेयं, षोडशाधार बंधनम्।।

अर्थात् कंठ का आकुंचन करके ठोड़ी को दृढ़ता से छाती में लगा दे इसी का नाम जालन्धर बन्ध है। यह बन्ध बुढ़ापे और मौत का नाश करने वाला है। क्योंकि यह बन्ध अधोगामि शिरा नाड़ियों के जाल को बाँधता है। इसलिए इसका नाम जालन्धर बन्ध है। कंठ का आकुंचन करने वाले जालंधर को कर लेने के बाद चन्द्र-मण्डल से स्रवित होने वाला अमृत अग्नि में नहीं गिरता, और न ही वायु का प्रकोप होता, यह बंध इड़ा पिंगला का स्तम्भन करके कंठ में स्थित षोड़शाधार विशुद्ध चक्र के बन्धन का कारण है। साधक को चाहिए कि मूलबन्ध के द्वारा गुदाद्वार का आकुंचन करके उड्डियान बन्ध लगाये और उड्डियान लगाने के बाद कंठसंकोचन लक्षण रुप जालंधर बंध को लगावे। जो साधक इन तीन बन्धों को लगा करके प्राणायाम का अभ्यास करता है वह अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है। साधक को चाहिए कि प्राणायाम से पहले इन तीनों बन्धों का अभ्यास बना ले। क्योंकि प्राणों पर कन्ट्रोल करने के लिए यह तीनों बन्ध परम श्रेयस्कर हैं। वस्तुतः प्राणपक्षी को यथार्थता से बाँधने में यह तीनों बन्ध ही सामर्थ्य वाले है। कुम्भक प्राणायाम से पहले साधक को चाहिए कि प्राण की गति को अधिक से अधिक लम्बी करना सीखे जिससे प्राणायाम काल में मनुष्य अपनी उस अमर साधना में पूर्णरूपेण सफल हो सके। योगी पवनाभ्यास से पहले ही निम्नांकित विधि से प्राण पर नियन्त्रण करना आरम्भ कर देते हैं। उसका रूप इस प्रकार है पवनाभ्यासी साधक समकाय शिरोग्रीव होकर सिद्धासन, स्वस्तीकासन अथवा पद्मासन से बैठ जाय। उसके बाद अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से दक्षिण नासिका के छिद्र को हलका सा दबा करके बायीं नासिका से ॐ ॐ का उच्चारण करते हुए शनैः शनैः श्वांस को खींचे। श्वास को इतनी धीमी गति से खींचें जिससे वह ॐ शब्द कम से कम 16 मात्राओं से अन्दर जा सके, जब बाह्य वायु पूर्ण रूपेण अन्दर चला जाये तो पहले उसे रोकने का प्रयत्न न करे प्रत्युत कोष्ठगत वायु को दक्षिण नासापुट से उसी प्रकार से प्रणव की 16 मात्रा गिनते हुए शनैः शनैः निकाल दे, प्राण बाहर निकाल देने के बाद प्राण में थोड़ी सी घबराहट आयेगी जिससे प्राण पुनः जल्दी से अन्दर जाने की चेष्टा करेगा।

किन्तु उस प्राण को यकायक अन्दर नहीं जाना चाहिए। प्रत्युत 16 की अपेक्षा दक्षिण नासापुट से प्रणव की 15 मात्रा गिनते हुए अन्दर ले जाय और पुनः फिर उसी प्रकार बाये नासारन्ध्र से ॐ की 15 मात्रा गिनते हुए निकाल दे। उसके बाद उसी नासिका से 14 मात्रा से ले जाय और दक्षिण नासिका से 11 मात्रा से ही प्राण बाहर निकाल दे, इसी प्रकार करते हुए प्राण की एक–एक मात्रा घटाते हुए प्राण को समगति पर ले आए। यह भी एक प्रकार का प्राणायाम ही है। एवं नाड़ी शोधन का ही एक प्रकार है। ऐसा करने से साधक प्राण की गति पर नियन्त्रण कर लेता है। हमारे आचार्यो ने पवनाभ्यासी को सबसे पहले नाड़ीशोधन प्राणायाम करने का आदेश दिया है। उपरोक्त प्राणायाम भी नाड़ी–शोधन का ही एक प्रकार समझना चाहिए। यह साधन हठावलम्बी साधकों का प्रारम्भिक साधन है। एवं पवनाभ्यासी सन्तों का अनुभूत है। इसका अभ्यास करने वाला साधक आगे की कठिन साधनाओ में कभी भी अभिभूत नहीं होता है। अतः कुम्भक प्राणायाम करने से पहले साधक को चाहिए कि इस रेचक पूरक को अभ्यास की दृढ़ता से बढ़ाता रहे और कम से कम 6 मास तक इसका अभ्यास करे। उसके बाद वह साधक प्राण जप का अधिकारी बन जाता है। एक बात का और अवश्य विचार रखना चाहिए, कि इस अमर साधना का अभ्यास अधिकारी को ही करना चाहिए जो जिस विद्या का अधिकारी है वही उसको पा भी सकता है। अनिधिकारी प्रवेश होने का प्रयत्न करता है तो वह स्खलित हो जाया करता है और बाद में इस प्रकार का साधक अपनी कमी न बतलाकर इस अमर विद्या के अन्दर दोष–दर्शन करता है और अन्य उत्साही साधकों को भी श्रेय मार्ग से च्युत करने का प्रयत्न करता है।

प्राणायाम का अधिकारी कौन ?

भगवान श्री महादेव जी ने योगाधिकारी साधक के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं –

महावीर्यान्वितोत्साहि मनोज्ञः शौर्यवानपि।
शास्त्रज्ञोऽभ्यास शीलश्च निर्मोहश्च निराकुलः।।
नव यौवन सम्पन्नो मिताहारी जितेन्द्रियः।
निर्भयस्य शुचिर्दक्षो दाता सर्व जनाश्रयः।।
अधिकारी स्थिरो धीमान् यथेच्छावस्थितः क्षमी।
सुशीलो धर्मचारी च गुप्तचेष्टः प्रियंवदः।।
शास्त्र विश्वाससम्पन्नो देवता गुरु पूजकः।
जन संग विरक्तश्च महव्याधि विवर्जितः।।
अधिमात्रतरोज्ञेयः सर्वयोगस्य साधकः।।

अर्थात् महावीर्यवान्, परम उत्साही, बुद्धि कौशल से मन के भावों को तत्काल समझने वाला, शूरवीर, शास्त्रों का ज्ञाता, अभ्यास शील, मोह और व्याकुलता से रहित, नवयौवन संपन्न, मिताहारी, जितेन्द्रिय, निर्भय, पवित्र, सभी कार्यों के करने में चतुर, दाता, सबको सहारा

देने वाला, सब प्रकार से अधिकारी दृढ, बुद्धिमान्, स्वायत्त चेष्टा सहन शील, सुशील, धर्माचारी, मृदुभाषी, मन के रहस्य को गुप्त रखने वाला, शास्त्र विश्वास सम्पन्न देवता एवं गुरुदेव का पूजक, जन संग रहित किसी प्रकार की व्याधि से ग्रसित न हो इस प्रकार का साधक उत्तम योगाधिकारी है। ऐसे साधक को पूर्ण आस्था एवं विश्वास पूर्वक अभ्यास करने से बहुत जल्दी सिद्धिप्राप्त होती है और इसके अतिरिक्त जो लोग श्रद्धाहीन है वह अपने लक्ष्य को पूर्ण रूपेण प्राप्त नहीं कर सकते।

न भवेत् संगयुक्तानां, तथा विश्वासिनामपि।

गुरु पूजा विहीनानां तथा च बहुसंगिनाम।।

मिथ्यावादरतानां च, तथा निष्ठुरभाषिणाम्।

गुरु संतोष हीनानां न सिद्धिः स्यात् कदाचन्।।

जो लोग कुसंगी हैं अविश्वासी हैं और गुरुदेव की पूजा से विहीन हैं जन–संग में पड़े रहते हैं, झूठ बोलते हैं और कठोर बोलते हैं गुरुदेव को संतुष्ट नहीं कर सकते ऐसे लोग कभी भी सिद्धि – भाजन नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त –

फलिस्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथम लक्षणम्।

द्वितीयं श्रद्धयायुक्त, तृतीयं गुरुपूजनम्।।

चतुर्थ समताभावं, पञ्चमेन्द्रिय निग्रहम्।

षष्ठं च प्रमिताहार, सप्तम नैव विद्यते।।

जो लोग विश्वास करने वाले हैं, श्रद्धा युक्त हैं, गुरुपदपूजक हैं, समत्व बुद्धि युक्त हैं, इन्द्रिय निग्रह युक्त ब्रह्मचारी हैं, और मिताहारी हैं ऐसे लोग थोड़े समय में ही सिद्धि को पा जाया करते हैं। साधक को चाहिये यत्न पूर्वक अपने अभ्यास को बढ़ाता रहे और उपरोक्त अभ्यास को दृढ़ता पूर्वक करता रहे। ऐसा करने से वह साधक हठ विद्या का उत्तम अधिकारी हो जायेगा। मनुष्य को कभी किसी साधना का स्वयं अवलम्ब नहीं लेना चाहिए। अनुभवी गुरु के द्वारा हठ विद्या को प्राप्त करना चाहिए। हमारा यह प्राचीन भारतीय विज्ञान है –

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्र समुद्भवा।

अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदुःखदा।।

अर्थात् गुरु मुख से प्राप्त हुई विद्या वीर्यवती होती है और पूर्ण फल की दात्री होती है जो विद्या इधर–उधर के प्रयास से या न जानने वाले अनधिकारियों से एवं कर्ण परम्परा से प्राप्त की जाती है, वह विद्या निर्वीर्य रहती है और कई प्रकार के कष्ट पैदा करती है। अतः श्री गुरुदेव के कृपा–प्रसाद और प्रसन्नता से ही विद्या प्राप्त करना चाहिए। विद्या की सफलता में गुरुदेव का आशीर्वाद ही अटल साधन है –

गुरु सन्तोष्य यत्नेन ये वै विद्यामुपासते।
अविलम्बेन विद्यायास्तस्या फल मवाप्नुयु:।।

अर्थात् जो लोग गुरुदेव को सन्तुष्ट करके विद्या प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, वे लोग अविलम्ब ही उस विद्या को पा जाते हैं एवं सब कार्यों में सफल रहते हैं।

आत्मविद् ही जानते हैं

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदु:।।

स्वर्णमय परम कोश (हृदय कमल) में निर्मल निरअवयत् ब्रह्म है, वह शुभ्र है, ज्योतियों का ज्योति है, उसको वे जानते हैं और आत्मा (अपने आप) को पहचानते हैं। ऐसे अवयव रहित ब्रह्म के पास -

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि।।

न आँख जाती है, न वाणी जाती है, न ही मन जाता है, न हम जानते हैं न पहुँचानते हैं, जैसा कि इसे दूसरे को समझा सकें, क्योंकि वह विदित से परे ही है और अविदित से भी परे है। ऐसे आनन्द रूप परम तत्व की उपलब्धि केवल ध्यान और समाधि द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

-श्रुतिसार

सिद्धयोग - हमारी प्यारी पत्रिका

— योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

प्रिय पाठकगण / गुरु भाई — बहिन,

जय गुरुदेव की।

क्षण-क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका 'सिद्धयोग' अपनी आयु के 44 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 45वें वर्ष में प्रवेश पा रही है। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ-साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र-पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धान्तिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है, ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है — *आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः।* अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान-योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात के अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से

परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गयी। पत्रिका के पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है; किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुसाध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन है – *'संशयात्मा विनश्यति'* अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि – ***'स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्'*** अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु !

पत्रिका के लिए गुरुदेव के समय से ही किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेव जी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मण्डल, कानपुर मण्डल व सहारनपुर मण्डल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क 150 रु. हो गया है तथा आजीवन 900 रु. है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में रावली आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभुजी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

रामनवमी योग महोत्सव दिनांक 30, 31 मार्च व 1 अप्रैल को मनाया निश्चित हो चुका है।

आपका

डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

आत्म चिंतन

(वर्ष में क्या खोया, क्या पाया?)

– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी

आज 31 दिसम्बर है। प्रत्येक समाचार पत्र में वर्ष 2011 की उपलब्धियाँ क्या पाया? क्या खोया? विस्तार से मूल्यांकन सहित, छप रही हैं। सोचा अपनी प्रगति एवं दुर्गति का लेखा–जोखा भी ले लिया जाय। यदि केवल एक पक्ष ही देखा जाय कि क्या पाया तो बात कुछ संतोषजनक बनती है कि कुछ तो पाया–भले ही शून्य के निकट हो। अर्थात् शारीरिक क्रियाओं के तहत, जिन्हें पं. रामसुख जी महाराज कुछ उपलब्धि मानते हैं, राम नाम जीभ से ही सही रहा तो। गाली तो नहीं दी अर्थात् प्रगति नहीं थी तो अधोगति भी नहीं थी।

यदि मनोविज्ञान में सीखने की परिभाषा देखते हैं तो पाते हैं – 'लर्निंग इज ए मौडीफिकेशन इन विहेवियर' अर्थात् सीखना व्यवहार में सुधार है, केवल जीभ (शब्दों) में सुधार नहीं।

अब हम दूसरे दृष्टिकोण से देखें कि क्या खोया? तो दृश्य निराशाजनक उपस्थित होता है। क्योंकि हमने मानव जीवन पाकर और वह भी श्री प्रभूजी से जुड़े आश्रमों में रहकर भी बहुत कुछ खोया होता है क्योंकि 'हम बारह मारे – चौदह पछारे' को भी उपलब्धि जो मान लेते हैं।

शाम को अपनी मित्र मण्डली में, साधू से शैतान तक, एक बार अवश्य ही दिनभर के कार्यकलापों का मूल्यांकन करते हैं। परंतु जैसी कि मन और पानी की स्वाभाविक गति नीचे की ओर होती है अतः दो चार सद्चर्चाओं के बाद लौट कर हम वहीं 'परनिन्दा' पर आ जाते हैं और इससे बड़ा लौकिक सुख कोई नहीं है। कबीर की यह बात – 'माया मरी न मन मरे' पद – सुन तो लेते हैं परंतु गुनते तब हैं जब शरीर के अंग साथ छोड़ने लगते हैं और यह अनुभूति हमें तब होती है जब बुढ़ापा सताने लगता है।

प्रश्न एक – बुढ़ापे का क्या लक्षण है? मेरी माँ कहती थीं 'जब खांय मरे, बिनु खांय मरे–कहो राम जी कैसे जियें' की स्थिति आ जाय तो समझ लेना चाहिए कि अब मौत की हिट लिस्ट में नाम आ गया है। परंतु – 'केला तब हिं न चेतिया जब ढिंग लागी बेर; और अब के चेते का भया जब कांटेन लीना घेर'।

अपने यहाँ धार्मिक ग्रन्थों में मानव शरीर के अंगों की तुलना, विशेष रूप से अवतार और भगवान के, कमल से की गई है– जैसे कर कमल, नेत्र कमल आदि। जैसे कमल कीचड़ और पानी में होकर भी निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार अवतार भी निर्लिप्त (निष्काम) कर्म करते हैं।

परन्तु युग बदला है हम बदले है। लोग कहते है ये कलयुग है परन्तु मेरा मत है कि यह खलयुग है और ...

जो जितना बड़ा खल (दुष्ट) है उतना ही सफल है। हाँ मैं बात निर्लिप्तता की कर रहा था, तब सद्पुरुषों के अंग कीचड़ से निर्लिप्त रहते थे और अब दुष्ट पुरुषों के अंग, आश्रमों में रहकर भी, सद्विचार और सद्कार्यों से निर्लिप्त रहते है। उन्हें अर्जुन की भाँति आश्रम की सम्पत्ति ही दिखाई देती है। प्रभु भी हिमालय अथवा क्षीर सागर में सो गये है। 'करेगा धरम, उसका फूटेगा करम' की स्थिति बन गई है। सज्जनों ने धनुष बाण, प्रभु को कर्ता, मान कर रख दिये है। एकाध बचे है उनसे ये ठग बकरे को कुत्ता बताकर छीनने का प्रयास कर रहे है।

फिर भी 'आशा बलवती राजन' सो आओ हम आह्वान करें कि 2012 में (1) सज्जन, सद्पुरुष इन दुष्टों की उपेक्षा करेंगे, इनसे न्यूनतम संपर्क भी नहीं रखेंगे। आप विश्वास रखें पछाड़ के मारे जाने से अधिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपेक्षित व्यक्ति मर जाता है और (2) प्रभु जी पर विश्वास करके कि वे भगवान कृष्ण की भाँति रथ हांकेंगे और हम बाण चलादेंगे इस आश्रम की पवित्रता गिराने और सम्पत्ति कब्जाने वालों का समाज में विरोध कर जनमत जाग्रत करेंगे।

और अंत में आश्रम (सवाई ग्राम भी) वासियों के लिए एक उद्बोधन गीत के साथ अपनी बात समाप्त करता हूँ –

मन्दिरों की देहरी पर, भक्ति से नित प्रणत होकर,
हृदयद्रावी आर्त स्वर से, माँगता तू मुक्ति का वर।
लौटना पड़ता तुझे पर, विफलता का भार लेकर,
सुन नहीं पड़ता तुझे, यह देवता का मौन उत्तर।।
भूव तेरे हाथ में है, मुक्ति के सब उपकरण,
ज्योति अपनी आप बन, तू आप बन अपनी शरण।।

वर्ष 2012 में आश्रम की चतुर्दिक प्रगति की प्रार्थना के साथ –

पता : 1, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
गोरखपुर – 273009
फोन नं. : 0551–2200036

योगेश्वर ततो मे दर्शयात्मानमव्यम्

– पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय, प्रवक्ता संस्कृत, गोरखपुर

योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के आकर्षण का प्रभाव समान भाव से समस्त जनमानस पर पड़ रहा है। जैसे सूर्य रश्मियों से समस्त संसार आलोकित उठता है। किन्तु ऐसे लोग जो उन रश्मियों से परे किसी ऐसे स्थान पर रहे, जहाँ उन पर उस प्रकाश का प्रभाव न हो तो वह अंधकार रूपी कूप में पड़ा रहेगा। कुछ ऐसी ही स्थिति हम कलियुगी प्राणियों की है। हम अज्ञानता में सदैव पड़े रहते है। यद्यपि सूर्य रूपी सद्गुरुदेव हम साधकों को प्राप्त हुए। उनसे उपदेश एवं दीक्षा भी प्राप्त किये। उसका प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों लाभ भी दिखा। किन्तु जैसा श्री मुख से उपदेश दिया गया, उसके अनुरूप शायद हम नहीं बन पाये। जिससे हमारी अकर्मण्यता दिख रही है। यह कहना भी शायद ठीक न हो, क्योंकि साधक की श्रेणी एक जैसी नहीं है। कौन साधक कहाँ किस ऊँचाई को छू रहा है। यह समझ में नहीं आ सकता है। क्योंकि साधक अपने साधन को गोप्य रूप से रखते हुए रहते हैं। गीता का अर्जुन योग्य साधक है। क्योंकि गीता माहात्म्य में कहा गया – ' पार्थोवत्स सुधीर्भोक्ता' इसीलिए योगेश्वर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गोपनीय आध्यात्मिक उपदेश दिया। जिससे उसके सारे संशय छिन्न हो गये। पुनश्च अर्जुन ने भगवान से निवेदन करते हुए कहा –

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मनं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरंपुरुषोत्तम्॥
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥

अर्थात् हे योगेश्वर आपने जैसा जो कुछ भी अब तक अपने बारे में जैसा बताया, हे पुरुषोत्तम आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल , वीर्य और तेज से युक्त ऐश्वर्य रूप को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। लेकिन ऐसा रूप मैं तब ही देखना चाहता हूँ जब मैं उसके योग्य होऊ। आपका वह अविनाशी रूप देखने में समर्थ भी हो सकूं। तब ही आप उसका दर्शन कराने की कृपा करें।

साधक की परीक्षा उसके साधन से ही ज्ञात होता है। जैसे विद्यार्थी विद्यालय में अध्ययन के पश्चात् परीक्षा देता है। तब किसी अधिकारी की पात्रता को प्राप्त करता है। तात्पर्य यह कि पढ़ाई पुन: परीक्षा दर परीक्षा अर्थात् लक्ष्य को प्राप्त हो जाना है। अर्जुन भी उपदेश रूपी परीक्षा से गुजरा तब कहा कि क्या मैं आपके योगेश्वर्य देखने के योग्य हूँ। यह भाव क्यों अब आया? पहले इस प्रकार की वृत्ति नहीं बनी। इसका मूल कारण वह साधक वृत्ति को धारण कर परीक्षा के दौर से गुजर रहा था। पात्रता परीक्षा का समय शायद परिपक्व न रहा हो। अब जैसे ही

उसकी परिपक्व वृत्ति बनी कि वह सुन्दर संयोग स्वाभाविक रूप से उपस्थित हो गया। इस साधक के जीवन में भी शायद सफलता का मूल कारण यही है। यदि शक्ति के स्त्रोतों को देखना और जानना चाहते हैं तो उसके लिए एकनिष्ठ साधन की आवश्यकता होती है। जैसे अर्जुन से भगवान ने कहा – ऐश्वर्य को चर्मचक्षु से देखा नहीं जा सकता है। उसके लिए अन्तर्जगत के चक्षु को जागृत करके ऐसा जान लिया जा सकता है। इसलिए मैं तुमको दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ। इससे तुम योग–ऐश्वर्य को जान सकते हो। हमारे सिद्धगुफा सवाई आश्रम के साधक को सद्गुरुदेव भगवान के शक्तिपात योग की दीक्षा के माध्यम से इस रहस्य को यत्किञ्चित् अवश्य ही जानते है। शिष्य जैसे ही पात्रता को प्राप्त करता है। सद्गुरुदेव अपनी कृपा की वर्षा कर ही देते हैं। इसके अन्य उदाहरण भी इस कलिकाल में भी देखने को मिलता है। स्वामी रामकृष्णपरमहंस का विवेकानन्द पर, भगवान बुद्ध का अंगुलिमाल पर तथा अन्य उपाख्यान सवाई के तमाम साधकों पर हुआ है।

सिद्धगुफा सवाई के साधक तो महाप्रभु के काल से लेकर आज वर्तमान में भी सद्गुरु कृपा से निहाल हो रहे हैं। अर्जुन ऐसा ही धन्य साधक है। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण जब अर्जुन पर शक्तिपात करते हैं तो वह उनके योग ऐश्वर्य को देखता है। ऐश्वर्य दिखाने का मूल कारण यही लगता है कि भगवान अर्जुन को अन्दर से भी दृढ़ शक्ति वाला बनाना चाहते हैं। क्योंकि युद्ध के क्षेत्र में वह विषाद से घिरा दिखता है। विभिन्न संशय घेरे हुए हैं। सभी समस्याओं का निराकरण करके अन्दर से भी पुष्ट मन वाला बना देना चाहते हैं। अर्जुन भगवान के ऐश्वर्यों को किन–किन रूपों में देखता है। वह उस परात्पर ब्रह्म योगेश्वर में ही समस्त भूत समुदाय ऋषि, दिव्य सर्प आदि विभिन्न स्वरूपों को देखता है। वास्तव में ईश्वर के स्वरूप का न तो आदि है न मध्य न तो अन्त ही है। सृष्टि की सर्जना भी वह अपने संकल्प से करने वाले योगेश्वर अपने योग्य शिष्य को हर प्रकार से संशय रहित कर देना चाहते हैं। जिससे वह युद्ध के लिए पूरी तरह से तैयार हो जाय। जब वह यह देखता है कि भगवान के दाँतों में दुर्योधन पक्ष के सभी योद्धा फंस कर परेशान हैं। किसी योद्धा का सिर फँसा है किसके हाथ सब उसी में छटपटा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे भयंकर बाढ़ के समय जल से भरी नदियाँ समुद्र की तरफ तेजी से बढ़ती चली जाती हैं। रास्ते के सारे अवरोध जल के प्रवाह से स्वाभाविक रूप से टूट–फूट कर गति के साथ समुद्र में प्रवेश कर जाते हैं। समुद्र सबको लील रहा है। वैसे भगवान के मुख रूपी समुद्र में सब विधर्मी चले जा रहे हैं। फिर भी संशय की गाँठ एक बार पुनः दिखती है। वह कह उठता है –

आख्याहि मे को भवानुग्र रूपो,
नमोस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं,
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥

अर्थात् हे उग्ररूप वाले आप कौन हैं? आपको नमस्कार है। क्योंकि आप देवों में सबसे

श्रेष्ठ है। हे आदि पुरुष आपको तो मैं अब विशेष रूप से जानना चाहता हूँ। आप की प्रवृत्ति को भी जानना चाहता हूँ।

भगवान का उत्तर बड़ा मार्मिक तथा समस्त संशयो को नष्ट करने वाला था-- 'कालोऽस्मि लोक क्षय कृत्त प्रवृद्धो' हे अर्जुन उपयुक्त समय पर मैं काल स्वरूप हो जाता हूँ तब लोकों का नाश करता हूँ। अब मैं इन आततायी रूपी लोक के समुदाय का नाश चाहता हूँ। इनकी सारी गतिविधियाँ नाश के योग्य है। यदि तू युद्ध भी न करेगा तो भी इनका नाश होना ही है। यह अर्जुन के लिए चुनौती तथा अन्दर का भारी संबल प्राप्त हो गया। अब अर्जुन का समस्त संशय, मोह नष्ट हो गया। भगवान ने संशय रहित मन स्थिति में जब दिव्य दर्शन कराया तो स्वय आश्वस्त भाव से कहा – 'निमित्त मात्रम् भव सव्यसाची।' भगवान ने अर्जुन को सव्यसाची अर्थात् बायें हाथ से भी बाण चलाने वाला होने के नाते कहा कि दाहिने हाथ से नहीं यदि बांये हाथ से भी बाण चलाओ तो भी ये मर ही जायेंगे। क्योंकि तू मरे को मार रहा है। यह ललकार है अर्जुन को जिससे वह कार्य मे पूरे मन से लग जाय। व्यवहारिक जीवन में हम सब भी विभिन्न प्रकार से ऐसी ललकार युक्त प्रेरणा से प्रेरित होकर कार्य कर जाते हैं। यह उस ईश्वर की कृपा का ही परिणाम है।

भगवान के इन दिव्य ऐश्वर्य युक्त दर्शन के पश्चात् अपने को बड़ा दीनहीन समझा। क्योंकि इसके पहले वह कृष्ण, यादव, सखा आदि तमाम सम्बोधनों से बुलाया जो भगवान के लिए बिल्कुल उपयुक्त नहीं था। वह ग्लानि से भर जाता है। हम सब भी अपने व्यवहारिक जीवन में ऐसी विभिन्न प्रकार की चेष्टाएँ करते रहते है। लेकिन हम महसूस भी नहीं करते हैं। यहाँ अर्जुन ने पूरी तरह से महसूस किया। साधक समुदाय को भी इसी प्रकार जीवन में सचेष्ट होना चाहिए। जिससे अर्जुन की तरह महसूस हो। सदैव उसी दिव्य दर्शन की प्रार्थना करता रहे। अन्तत: अर्जुन ने भगवान से प्रार्थना उसी अवस्था में किया हे प्रभो! आप अपने सामान्य स्वरूप का दर्शन करावे। अपने स्वाभाविक रूप में आने के बाद कहा कि – हे अर्जुन इस रूप का दर्शन आज तक किसी को भी नहीं हुआ। मैं तुमको प्रथम बार दर्शन दिया हूँ। इस स्वरूप को किसी क्रिया द्वारा नहीं देखा जा सकता है। क्योंकि मेरा यह रूप तुम्हारे जैसा अंतरंग ही पात्रता एवं योग्यता के अनुसार देख सकता है। तुलसी दास जी ने भी कहा कि – जिसको भगवान स्वयं अपने बताना चाहते हैं वही उनके विग्रह स्वरूप का दर्शन ज्ञान कर पाता है। वस्तुत: ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए पात्रता एवं योग्यता के साथ उनकी कृपा का विशेष महत्व है। इसीलिए भगवान ने अर्जुन को संबोधित कर कहा जोकि सम्पूर्ण जनसमुदाय के हितार्थ है–

मत्कर्मकृन्मत्परो मद्भक्त: सङ्गवर्जित:।
निर्वैर सर्वभूतेषु य: स मामेति पाण्डव।।

हे अर्जुन जो व्यक्ति यह मानकर कार्य करता है कि यह समस्त कार्य ईश्वर का है मैं निमित्त मात्र उनकी कृपा का पात्र हूँ। मेरा मूलधर्म ईश्वर की आराधना तथा यह कामना और

आसक्ति से रहित हो। किसी भी प्राणी से बैर भाव न हो। यदि कोई स्वाभाविक बैर करे तो भी हमें उसके प्रति जरा भी बैर भाव न उत्पन्न हो। ऐसा अनन्य भक्ति वाला पुरुष ही उस परात्पर ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। भगवान ने बड़ी कसौटी सामने रखी है। अब समस्या यह है कि इस कलियुग में ऐसा संभव हो सकता है। प्रश्न जटिल अवश्य है किन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि ऐसे जीव इस में नहीं होंगे, क्योंकि संसार उनका है। कर्म करते हुए व्यक्ति को कर्तापन का अभिमान नहीं होना तथा प्रत्येक कर्म को स्वाभाविक तथा ईश्वर का मान कर करते रहना चाहिए। निश्चय ही वह कृपालु अपनी कृपा करेंगे ही।

गोमाता

– डॉ. जगदीश शरण बिलइयाँ
''मधुप'' द्विवेदी (दतिया)

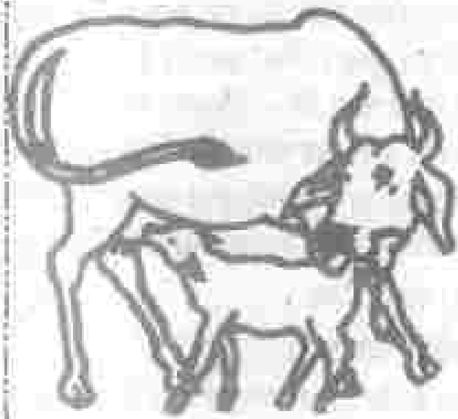

गोमाता इस जगत की,
माता ही कहलाय।
पर, माता से यह बड़ी,
महिमा कही न जाय।
महिमा कही न जाय,
देव इसके तनवासी।
बसा सभी ब्रह्माण्ड,
त्रिपथगा, सरि, सर काशी।
कहत मधुप ''महिदेव'',
यही ''पञ्चामृत'' दाता।
मनुज तुझे धिक्कार,
कटाता जो गोमाता।

योग ही दिव्य अविनाशी जीवन है।

संकलित : आचार्य अमित कुमार मिश्र, शुक्लागंज (उन्नाव)

त्रिजगत पावन अखिल ब्रह्माण्ड रचयिता योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी भगवान दीन दु:खी निर्बल भक्तों की पुकार सुनकर अपने सिद्धाश्रम (जहाँ श्री महाप्रभु जी आदि–अनादि काल से समाधिस्थ हैं) से इस धरा धाम पर अपने योग स्वरूप में साधारण से दिखने वाले 'पण्डित वेश' में प्रकट हुए। हमारे और आपके हृदयाराध्य सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अकसर बतलाया करते थे – '(उन्हीं की योग वाणी में) लल्ला, श्री प्रभु जी तो अनादि सिद्ध हैं, वह हजारों वर्षों से हिमालय के सिद्धाश्रम में समाधिस्थ हैं, यथार्थ तो यह है कि वह सदेह धरती पर कभी आये ही नहीं, निर्माण काय सिद्धि द्वारा आये एवं उसी द्वारा चले गये।'

हरिद्वार में उस समय महाकुम्भ का मेला लगा हुआ था, अपने दिव्य योगेश्वर्य द्वारा श्री महाप्रभु जी ने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री तीर्थराम जी और कुटुम्बी जनों को दर्शन दिया एवं सामान्य वेश में ऋषिकेश में रेलवे से त्रिवेणी घाट को जाती हुई पगडंडी के किनारे 'योग साधन आश्रम' एवं हरिद्वार में कनखल में 'योग अभ्यास आश्रम' की स्थापना की।

ऋषिकेश के अपने 'योग साधन आश्रम' के मुख्य द्वार पर ही श्री महाप्रभु जी का योग संदेश स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है 'योग ही दिव्य अविनाशी जीवन है।' योग ही जीवन जीने की कला है, योग ही जीवन का आधार है।

आज सांसारिक मनुष्यों के दृष्टिकोण में योग की परिभाषा ही परिवर्तित हो गई है, लोग 'योग' को 'योगा' कहकर सम्बोधित करते हैं एवं योगा का तात्पर्य 'आसन' से लगाते हैं। 'आसन' योग नहीं बल्कि योग का तीसरा अंग है।

पतंजलि भगवान (महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का ही दिव्य अवतार) ने योग की विशद् व्याख्या करते हुए बताया है कि ***'योगश्चित्तवृत्ति निरोध:'*** अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। श्री मद्भगवद्गीता में श्री भगवान ने ***'योग: कर्मसु कौशलम्'*** कहकर योग को परिभाषित किया है अर्थात् कर्म की कुशलता ही योग है। कर्म की कुशलता से अभिप्राय यह है कि कर्म इस प्रकार से किया जाए कि बंधन का कारण न बनें।

गुरुदेव श्री बतलाया करते थे कि योग के पाँच अंग बहिरंग एवं शेष तीन अन्तरंग हैं। ये क्रमश: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि हैं।

पतंजलि भगवान ने पातंजल योग सूत्र में वर्णन किया है –

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽष्टावंगानि।। –2/29

(1) यम – यम बाह्य अनुशासन का प्रतीक है। यम शब्द से अभिप्राय मृत्यु के देवता से कदापि नहीं है, यहाँ पाँच व्रतों की एक संज्ञा है जिसे नियत करे उसका नाम यम रखा गया है कहते हैं – यमयति निवर्तयति इति यमः। जो हमें अवांछनीय कार्यों से बचाता है या मुक्ति दिलाता है उसे यम कहते हैं।

"पतंजलि भगवान ने इसे पाँच भागों में विभाजित किया है –

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

– योग दर्शन 2/30

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।

1. अहिंसा – श्री प्रभु जी बतलाया करते थे – ***'अहिंसा प्रतिष्ठायाम्, तत्संनिधौ वैरत्यागः'*** अर्थात् जो किसी को दुःख नहीं देना चाहता उसके सम्पर्क में आने वाले हिंसक प्राणी भी वैर भाव छोड़ देते हैं। अहिंसक वही होता है जो मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को भी दुःख देना नहीं चाहता, किन्तु ऐसा अहिंसक योग समाधि में पहुँचकर ही बन पाता है।"

श्री महाप्रभु जी के परम प्रिय शिष्यों में ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज का एक वृत्तान्त है, कि जब वे श्री महाप्रभु जी के पास आये तो उन्हीं के पीछे उनके पिता जी उन्हें वापस लिवा जाने के लिए आ गये। उस समय ब्रह्मचारी जी का नाम श्री रामगोपाल था। उनके पिता जी श्री महाप्रभु जी से विनम्र निवेदन करते हुए बोले, हे योगेश्वर महाराज हमारा एक ही लड़का है। आप इसे घर भेजने का कष्ट करें, आपकी महान कृपा होगी। श्री महाप्रभु जी बोले – यह तुम्हारा लड़का है, अपने साथ लिवा ले जाओ। उस समय ब्रह्मचारी जी ध्यानस्थ थे। जब उनके पिता जी वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि एक भयंकर विषधर उनके गले में लिपटा हुआ है। दो तीन बार वह अपने पुत्र के पास जाने के लिए बढ़े, किन्तु सर्प फुसकार मारता रहा। ब्रह्मचारी जी के पिता श्री गोविन्दशरण जी सोच में पड़ गए कि यह सर्प मुझे तो काटने को दौड़ता है कि मेरे बेटे के गले में अत्यन्त स्नेह से लिपटा हुआ है। इस बात से प्रभावित होकर उन्होंने सदा के लिए उन्हें श्री महाप्रभु जी के चरणों में रहने की अनुमति दे दी। यह सब अहिंसा वृत्ति का ही परिणाम था।

2. सत्य – मन, वचन और कर्म में एकरूपता समाहित करने के लिए सत्य व्रत का पालन करना चाहिए। श्री प्रभु जी अक्सर बतलाया करते थे – ***'सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्'*** सत्य की प्रतिष्ठा होने पर वाणी और विचारों में क्रियाफल दान की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो कुछ भी बोलता है वह फलित होने लगता है अर्थात् वाक्सिद्धि हो जाती है।

महाभारत में भगवान वेदव्यास जी वर्णन करते हैं –

न तत्व वचन सत्यं, न तत्व यचनं मृथा।
मद्भूत हितं मत्यन्तम् सत्सत्यमिति कुश्यते।।

बात को ज्यों का त्यों कर देना सत्य नहीं है और न बात को ज्यों का त्यों कह देना ही सत्य नहीं है। जिसमें प्राणियों का हित समाहित हो वही सत्य है।

श्री प्रभु जी अपने बच्चों से अक्सर ही कह दिया करते थे – जा लल्ला श्री महाप्रभु जी सब ठीक कर देंगे। जा, मुनिया श्री महाराज जी तेरी सोची सफल करेंगे और वह सफल भी हो जाता था। यही वाक्सिद्धि है।

3. अस्तेय – चोरी न करना। शरीर, मन और वाणी द्वारा दूसरों के द्रव्य की इच्छा भी न करना अस्तेय कहलाता है। श्री प्रभु जी बड़े सरल शब्दों में बतलाया करते थे ***'अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्'*** अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सर्व रत्नों की प्राप्ति स्वतः हो जाती है।

4. ब्रह्मचर्य – मन को ब्रह्म या श्री महाप्रभु जी, श्री प्रभु जी परायण बनाए रखना ही ब्रह्मचर्य है। श्री प्रभु जी ब्रह्मचर्य को सरल शब्दों में परिभाषित कर समझाया करते थे ***'वीर्य धारणं ब्रह्मचर्यः'*** शरीरस्थ वीर्य शक्ति की अविचल रूप में रक्षा करना या धारण करना ब्रह्मचर्य है। श्री प्रभु जी, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज, योगिराज श्री हरिहरानन्द जी महाराज जीवन पर्यन्त श्री महाप्रभु जी परायण होकर ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करते रहे। अपने धाम श्री सवाई में आज भी सर्वोच्च कोटि के ब्रह्मचारी श्री महाप्रभु जी, श्री प्रभु जी परायण होकर साधनारत हैं।

5. अपरिग्रह – संचय वृत्ति का त्याग ही अपरिग्रह है। तुलसी दास जी महाराज ने इसके बारे में ही कहा है –

नाथ सकल सम्पदा तुम्हारी।
मैं सेवक समेत सुत नारी।।

(2) नियम – नियम का तात्पर्य आंतरिक अनुशासन से है। यम व्यक्ति के जीवन को सामाजिक एवं बाह्य क्रियाओं से सामंजस्यपूर्ण बनाते हैं और नियम उसके आंतरिक जीवन को अनुशासित करते हैं।

अनुरक्तिः परे तत्व सततं नियमः स्मृतः।

परमतत्व में निरन्तर अनुरक्ति ही नियम है।

पतंजलि भगवान ने नियम के 5 अंग बताए हैं–

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमाः।।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर शरणागति ये पाँच नियम हैं।

(3) आसन – आसन शब्द संस्कृत शब्द के 'अस्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता

है – बैठना।

श्री प्रभु जी कहा करते थे कि चौरासी लाख योनियाँ है, एवं चौरासी लाख आसन है। जीव जन्तुओं के उठने-बैठने के तरीके को ही आसन कहते है। योगयोगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जी श्री गीता में कहते है–

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिर:।

काय सिर और गले को सीधे अचल धारण करके तथा दिशाओं को न देख केवल नासिका के अग्र भाग को देखते हुए स्थिर होकर बैठना आसन है।

श्री महाप्रभु जी ने हिमालय से आने के उपरान्त इन चौरासी लाख आसनों का समुच्चय जीवन तत्त्व साधन की नौ क्रियाओं को जन जीवन के कल्याण के लिए अपने मन से जनसाधारण में प्रसारित किया। श्री प्रभु जी कहा करते थे कि इसको छ: माह निरन्तर करते रहने से शरीर का कायाकल्प हो जाता है।

(4) **प्राणायाम** – प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है प्राण+आयाम। प्राण जीवनी शक्ति, आयाम–विस्तार या धारण करना अर्थात् प्राणों का विस्तार करना ही प्राणायाम है।

श्री प्रभु जी बताया करते थे – ***तस्मिन् सति श्वास प्रश्वास योर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:।*** आसन के सिद्ध होने पर श्वास–प्रश्वास की गति में विच्छेद कर देना प्राणायाम है।

(5) **प्रत्याहार** – प्रति+आहार = प्रत्याहार अर्थात् उलटा होना। इसमें इन्द्रियाँ बहिर्मुखी विषयों से विमुख होकर अंतर्मुखी हो जाती है। ***चित्तस्यान्तर्मुखीभाव: प्रत्याहार:।*** चित्त का अंतर्मुखी भाव होना ही प्रत्याहार है।

(6) **धारणा** – इसका अर्थ है – दृष्टिकोण। ***'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'*** अपने चित्त को किसी देश विशेष में केन्द्रित करना। श्री प्रभु जी कहा करते थे – नाभि चक्र, ह्रदय कमल, मूर्धा ज्योति, नासिकाग्र, जिव्हा आदि देशों में अथवा किसी बाह्य विषयों में वृत्ति मात्र से चित्त को एकाग्र करने का नाम धारणा है।

(7) **ध्यान** – ध्यान शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के ध्यैचिन्तायाम् धातु से हुई है जिसका अर्थ है – चिंतन करना, अर्थात् चित्त को एक ही लक्ष्य पर स्थिर करना ध्यान कहलाता है। ***'सोऽहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते'*** ध्यान उस अवस्था का नाम है जब साधक स्वयं को चिन्मात्र ब्रह्मतत्व समझने लगता है।

श्री प्रभु जी बतलाया करते थे – मूलाधार कमल पर श्री गजानन विराजमान हैं, सर्वप्रथम साधक कल्पना करेगा। मूलाधार में चार कमल दल हैं। श्री गणपति जी बीच में विराजमान है। बायें-दायें ऋद्धि–सिद्धियाँ है। पीत वर्ण की धोती पहने हुए हैं, उनकी लम्बी सूंड है, पेट बड़ा है। सिर पर मुकुट विराजमान है। साधक इसी प्रकार का चिन्तन मनन करेगा, तो वह शनै: शनै: स्वयं श्री गणपति जी की जगह विराजमान हो जायेगा एवं उसमें व ब्रह्म में कोई भेद

नहीं रह जायेगा।

(8) **समाधि** – ध्येय वस्तु में एकाग्रतापूर्वक मन की स्थापना ही समाधि है। ***'तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यमिव समाधिः'*** जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है तब वह समाधि की स्थिति होती है।

समाधि के दो प्रकार होते हैं – (क) संप्रज्ञात समाधि, (ख) असंप्रज्ञात समाधि।

(क) **संप्रज्ञात समाधि** – संशय एवं विपर्यय का अभाव हो जाने से जिसके द्वारा ध्येय पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को भली भांति जाना जाता है वह संप्रज्ञात समाधि है।

(ख) **असंप्रज्ञात समाधि** – यह योग की उच्चतम स्थिति है जो संप्रज्ञात समाधि के पश्चात् होती है। जब संसारी विषयों एवं पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तथा सभी विषयों से चित्त का संबंध भी छूट जाता है, यही योग की चरम अवस्था है, जिसे असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं।

(इस लेख का विस्तृत स्वरूप श्री चन्द्रमोहन जी भगवान द्वारा रचित योग सिद्धान्त – भाग–1 एवं 2 में आप देख सकते हैं।)

योग से ही मानव अपने मन को एकाग्र करके आत्म साक्षात्कार करते हुए अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हुआ करता है। यही योग विज्ञान है एवं अविनाशी दिव्य जीवन प्रदान करने वाला है। योग के बिना साधना करना असम्भव है।

उन योगेश्वर द्वय जिनके पतित पावन चरण कमलों से यह धरा पवित्र हुई एवं हम अधमियों को जिन्होंने अपनाया – उनके श्री चरण कमलों में कोटि–कोटि नमन। अस्तु!

शोक समाचार

यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि सागर, मध्यप्रदेश निवासी हमारे पुराने गुरु भाई **ताराचन्द गुप्ता** का 5 फरवरी 2012 को देहावसान हो गया है। ये गुरुदेव के पुराने व लाड़ले शिष्यों में से थे। इनकी आयु 91 वर्ष थी। इन्होंने सागर में गुरुदेव के कई कार्यक्रम कराये थे।

दुःख की इस बेला पर दुःख संतप्त परिवारीजनों को सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

जय गुरुदेव!

– सम्पादक सिद्धयोग

बिहार प्रान्त में श्री सिद्धयोग का बीजारोपण

प्रेषक – केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

प्रस्तुत कृपा प्रसंग सन् साठ–सत्तर के दशक का है। हमारे आदरणीय गुरुभाई लाला रामधन दास जी बिहार प्रान्त के झरिया शहर के निवासी थे। अब हमारे ये गुरुभाई बहन दम्पत्ति तो इस नश्वर संसार में नहीं रहे परन्तु इनका भरापूरा परिवार है। जो योगेश्वर द्वय की कृपाओं से लबालब भरा हुआ है। आदरणीय भाई लाला रामधन दास जी, हमारे आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की अशरण–शरण को कैसे प्राप्त किये, इस रहस्य को समझना और समझाना ही इस कृपा प्रसंग का मुख्य विषय है।

आदरणीय गुरुभाई लाला रामधन दास जी के एक सहोदर भाई का नाम श्री रतीराम अग्रवाल था। उनकी बहन की शादी कलकत्ता के व्यापारी श्री जगरनाथ प्रसाद जी से हुई थी। इस प्रकार सेठ जगरनाथ प्रसाद जी लाला रामधन दास अग्रवाल के रिश्ते में बहनोई लगते थे। श्री जगरनाथ प्रसाद जी का परिवार श्री गुरुदेव भगवान योगिराज चन्द्र मोहन जी महाराज से दीक्षित था। इस परिवार पर श्री गुरुदेव भगवान की अब तक अनेक कृपायें हो चुकी थीं। श्री जगरनाथ दम्पत्ति की सन्तानों में एक बालिका थी जिसका नाम कुमारी कमलेश था। वह श्री गुरुदेव भगवान की प्यारी बच्ची थी। श्री गुरुदेव भगवान उससे बहुत प्यार करते थे। कुमारी कमलेश भी आराध्यदेव जी को ईश्वर ही मानती–जानती थीं। आराध्यदेव की छत्रछाया में पलते हुए, उसकी उम्र विवाह के लायक हो गयी। श्री जगरनाथ जी ने अपनी बच्ची कुमारी कमलेश की शादी के निमित्त योग्य वर – घर मिलने के लिए श्री गुरुदेव भगवान से, उनके कलकत्ता के योग प्रचार कार्यक्रम में प्रसाद माँगा। श्री जगरनाथ जी को प्रसाद देते समय जब कुमारी कमलेश ने श्री चरणों में अपना सिर रखकर प्रणाम निवेदित किया तो श्री मुख ने कमलेश के सिर को अपने वरदाइनी हाथ से सहलाते हुए आर्शीवाद दिया था कि हमारी बच्ची का लोक–परलोक दोनों लाजवाब होगा।

श्री गुरुकृपा प्रसाद ने, जो प्रसाद कुमारी कमलेश की शादी के लिए दिया गया था, अपना प्रभाव दिखाया। बहुत ही उत्तम परिवार में होनहार लड़के से शादी तय हो गयी। लड़के वालों ने झरिया (धनबाद), जो बिहार प्रान्त का शहर है, से शादी करने की शर्त रखी। बिहार प्रदेश के झरिया शहर में ही कुमारी कमलेश का ननिहाल था, अतः कोई विशेष असुविधा नहीं होगी, ऐसा मानकर श्री जगरनाथ जी ने; वह शर्त स्वीकार कर ली क्योंकि ऐसा घर–वर मिलना दुर्लभ था। शादी का दिन–दिनांक तय हो गया। कुमारी कमलेश ने श्री गुरुदेव भगवान में ईश्वरीय श्रद्धा–विश्वास रखते हुए पत्र लिखा, 'भगवन्! मेरी शादी अमुक दिन–दिनांक को

बिहार प्रान्त के धनबाद शहर से होनी निश्चित हुई है। हम सभी लोग इस दिनांक को यहाँ से धनबाद के लिए प्रस्थान कर जायेंगे। आप ही मेरे माँ, बाप, ईश्वर और श्री गुरुदेव हैं। शादी के पूर्व एवं बाद आपका आशीर्वाद ही हमारा सहारा रहेगा। साथ ही आप से एक और प्रार्थना है कि ऐसी कृपा करो प्रभो कि ससुराल में आपके स्थूल दर्शन एवं चरणरज मिलने का सौभाग्य बना रहे।' कुमारी कमलेश की अद्वितीय श्रद्धा एवं विनयावत प्रार्थना के भावों को पढ़कर श्री आराध्यदेव को राजी होना पड़ा कि वे विवाह के समय वहाँ स्थूल रूप से रहेंगे एवं नवयुगल को अपना आशीर्वाद देकर निहाल करेंगे। श्री गुरुदेव भगवान ने उसी दिन सेठ जगरनाथ प्रसाद को पत्र भेजा। उस पत्र में कुमारी कमलेश के पत्र का हवाला देते हुए, यह लिखा था कि लल्ला! मेरे अनुकूल रुकने की व्यवस्था बना सको तो मैं शादी वाले रात-दिन धनबाद रहना चाहता हूँ। श्री गुरुदेव भगवान का यह कृपा पत्र मिलने के बाद श्री जगरनाथ जी बेहद प्रसन्न हुए एवं श्री गुरुदेव भगवान का वह कृपा पत्र लेकर अपनी ससुराल धनबाद आ गये। यहाँ पहुँचते ही उन्होंने सभी रिश्तेदारों को एकत्र करके श्री गुरुदेव भगवान का वह पत्र स्वयं पढ़कर सुनाया और उनकी आध्यात्मिक स्थिति स्पष्ट करने हेतु उनकी अहैतुकी कृपा के कई कृपा प्रसंग सुना कर, यह अच्छी प्रकार समझा दिये कि मेरे श्री गुरुदेव किसी माने में ईश्वर से रंचमात्र भी कम नहीं हैं बल्कि कुछ ज्यादे ही हैं। अतः आप लोग यदि उनके रुकने का समुचित प्रबन्ध कर सकें तो मैं, उनसे शादी में उपस्थित होने की प्रार्थना करूँ। उनका बिस्तर बिल्कुल नया होगा जिसका कोई प्रयोग न किया हो। उन्हें पीने के लिए पवित्र गंगाजल या पवित्र कुँए का पानी चाहिए। भोजन लकड़ी पर या उपले पर बनाना होगा आदि-आदि। साथ ही उनकी सेवा में चौबिसों घण्टे शुद्ध एवं पवित्र विचार का एक प्राणी रहेगा। भाई श्री रामधन दास अग्रवाल जी भगवान के अच्छे भक्तों में से थे। अतः उन्होंने सभी कार्य पवित्रता एवं शुद्धता से स्वयं करने या अपने परिवार से कराने का वचन दे दिया। श्री जगरनाथ जी ने आराध्यदेव जी को पत्र लिखा, 'प्रभो! आपके ठहरने की समुचित व्यवस्था हो गयी है। कमलेश की शादी जो अमुक दिन-दिनांक को है, आप अवश्य ही आने का कष्ट करें। साथ ही यह भी सूचित करने की कृपा की जाय कि धनबाद शहर में किस साधन से, किस दिन, किस स्टेशन पर, आप कब पहुँच रहे हैं' यह पत्र धनबाद से ही श्री गुरुदेव के पते पर छोड़कर वह कलकत्ता लौट गये।

उन दिनों फोन एवं मोबाइल की ऐसी व्यवस्था नहीं थी जितनी आजकल है। अभी शादी लगभग दो माह बाद होनी थी। आराध्यदेव जी ने शादी में उपस्थित होना स्वीकारते हुए अपने कार्यक्रम का कृपा पत्र भाई श्री जगरनाथ जी को एक हफ्ते के अन्दर उपलब्ध करा दिया। शादी के पन्द्रह दिन पूर्व श्री जगरनाथ जी का पूरा परिवार, दल-बल के साथ धनबाद शहर पहुँच गया। शादी के दिन श्री गुरुदेव भगवान प्रातः काल ही धनबाद स्टेशन पहुँच गये। लाला श्री रामधन दास जी अपने एक बालक और आज्ञाकारी नौकर के साथ स्टेशन पर पहले से ही आगवानी में उपस्थित थे। इस परिवार का श्री गुरुदेव भगवान से परिचय कराने के लिए; श्री

जगरनाथ परिवार का एक सदस्य भी था। गाड़ी से उतरते ही उसने साष्टांग प्रणाम किया एवं तदनन्तर श्री रामधन जी, उनके सुपुत्र एवं नौकर ने चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया। श्री जगरनाथ परिवार के सदस्य ने आराध्यदेव जी का श्री रामधन दास जी से परिचय कराया एवं फिर विवाह स्थल पर पहुँच गया। वहाँ से श्री रामधन दास जी महान श्रद्धा एवं उत्साह के साथ श्री गुरुदेव भगवान को अपने घर ले गये। घर पर पहुँचते ही उनके परिवार के लोगों ने मालायें पहनायीं एवं सिर रखकर चरणों में प्रणाम अर्पित किया। तदन्तर श्री गुरुदेव को घर की एक कोठरी में ठहराया गया जिसमें लम्बा–चौड़ा नया तख्त रखा था एवं उस पर बिल्कुल नया बिस्तर लगा था। थोड़ा विश्राम करने के बाद आराध्यदेव दन्त धावन कर स्नान किया और फिर अपने साथ लाया भोजन करके विश्राम किया। श्री रामधन दास जी ने भोजनोपरान्त हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, 'हे भगवन! जब भी किसी कार्य हेतु आवश्यकता पड़े, केवल रामधन–रामधन पुकारियेगा मैं आपके सामने आ जाऊंगा। मैं अपने परिवार के साथ केवल आपकी सेवा में रखा गया हूँ, शादी में मुझे और कोई कार्य नहीं है।' आराध्यदेव जी आराम के बाद रामधन पुकारे एवं श्री रामधन जी हाथ प्रणाम की मुद्रा में जोड़े तत्काल सामने उपस्थित हो गये। आराध्यदेव ने अपने मुखारविन्द से कहा कि लल्ला! तुम मुझे बहुत प्यारे लगते हो और भगवान श्री कृष्ण भी हमें बहुत ही प्यारे लगते हैं, अतः मैं तुम्हें गोपाल शब्द से सम्बोधित करूंगा। लाला रामधन दास जी ने प्रार्थना किया, 'भगवन्! जैसी आपकी इच्छा।' तदनन्तर श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से कहा, 'गोपाल! शादी के कार्यक्रम का पता करो।' श्री रतीराम अग्रवाल का मकान बिल्कुल करीब था, जहाँ से शादी का कार्यक्रम होना था। आदरणीय भाई श्री रामधन दास जी गये एवं तत्काल पता लगाकर आ गये। उन्होंने श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना किया, 'भगवन्! अभी कुमारी कमलेश शादी के लिए तैयार हो रही है और मात्र आधे घण्टे बाद आपको आशीर्वाद के लिए बुलाया जायेगा।'

आराध्यदेव जी सोकर उठे थे, अतः अपना हाथ–मुख धोये एवं श्री रामधन दास जी को आदेश दिये कि गोपाल पानी पिलाओ। उन्होंने श्री आराध्यदेव जी को पीने का जल दिया। तब तक बुलावा आ गया एवं श्री प्रभु जी श्री रामधन दास जी के साथ विवाह स्थल पहुँच गये। सर्वप्रथम कुमारी कमलेश ने प्रणाम किया एवं तदनन्तर सभी घरातियों ने श्री चरणों में अपना सिर रखकर प्रणाम किया। श्री मुख ने सबको आशीर्वाद दिया। थोड़ी देर वहाँ (एक–डेढ़ घण्टे) रुक कर आराध्य श्री रामधन दास जी के घर अपने निवास स्थान पर आ गये। आराध्यदेव जी ने फिर स्वच्छ और पवित्र पानी मँगाया और श्री प्रभू जी का आरती पूजा का बर्तन साफ किया एवं छोटे बक्स को खोलकर आलमारी पर रेशमी शाल बिछाया एवं उस पर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक परम योग योगेश्वर, हमारे दादा गुरुदेव महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज को विराजमान कराया एवं उनकी आरती की। आरती के समय श्री रामधन दास एवं उनकी अल्प वयस्क बच्ची, आरती में उपस्थित थे। आरती के बाद श्री गुरुदेव अपनी तख्त पर अर्ध

पद्मासन की मुद्रा में श्री महाप्रभू जी की तरफ मुखातिब होकर बैठ गये एवं रामधन दास की बच्ची से बोले, 'मुनिया भोजन बना लेती हो?' प्रति उत्तर में उसने हाँ कहा। श्री गुरुदेव भगवान ने उसको आदेश दिया, 'मुनिया! स्नान करके चार–पाँच पराठे सब्जी जल्दी बना दो श्री प्रभु जी को भोग लगाना है। उसने जब तक भोजन तैयार किया आराध्यदेव उसी मुद्रा में दादा गुरुदेव के सम्मुख बैठे रहे। भोजन तैयार हो जाने पर उन्होंने भोग लगाया एवं वही प्रसाद ग्रहण किया। रात्रि भोजन के बाद श्री मुख ने अपने गोपाल (लाला रामधन दास अग्रवाल) से कहा कि बाल्टी में पानी रखकर उसे ढक दो। अब मैं आराम करूंगा। विवाह सम्पन्न होने के बाद आधे–पौन घण्टे पूर्व हमें आकर जगा देना। मैं तुम्हारे साथ विवाह स्थल चलूंगा। श्री रामधन दास जी ढाई बजे भोर में आये, श्री गुरुदेव भगवान को जगाने ही वाले थे कि श्री मुख ने आदेश दिया, गोपाल चलो चला जाय।

श्री गुरुदेव भगवान लाला रामधन दास के साथ विवाह स्थल पहुँच गये। वहाँ उनके लिए आराम कुर्सी पर कम्बल और कालीन रखकर आसन लगाया गया था, उस पर जाकर विराजमान हो गये। विवाह सम्पन्न हो जाने पर, मांगलिक आशीर्वादों के बाद उन्होंने नव दम्पति के सिरों पर अपना दोनों वरदहस्त (एक के सिर पर बांया एवं एक सिर पर दांया) हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। दोनों के सिर पर अपने दोनों कर कमल रखकर लगभग पाँच मिनट तक अमोघ आशीर्वाद दिये। तदन्तर श्री जगरनाथ जी के परिवार के सभी सदस्यों ने बारी–बारी प्रणाम किया एवं श्री मुख ने सबको आशीर्वाद दिया। इतना कार्य सम्पन्न करने के बाद अनाथनाथ श्री रामधन जी के साथ अपने निवास स्थान आ गये। रात्रि के पौने चार बज रहे थे। श्री गुरुदेव भगवान श्री रामधन जी की सेवा लेकर नित्यकर्म से निवृत्त हुए एवं स्नानादि से निवृत्त होकर ठीक पाँच बजे श्री प्रभु जी की आरती किये एवं श्री प्रभु जी के सम्मुख पद्मासन लगाकर बैठते हुए आदेश दिये, 'आज की रात्रि तुम्हें तनिक भी आराम नहीं मिला। खैर कोई बात नहीं, विवाह स्थल चले जाओ एवं विदाई से पूर्व आ जाना, मैं तुम्हारे साथ चलूंगा। श्री रामधन दास जी विवाह स्थल गये एवं लगभग प्रातः सात बजे वापस आ गये। आराध्यदेव जी श्री रामधन जी के साथ विवाह स्थल पहुँच गये जहाँ दुल्हन बनी श्रीमती कमलेश विदाई की डोली पर सवार होने से पूर्व अपने परात्पर पिता के आशीर्वाद का इन्तजार कर रही थी। पहुँचते ही उसने प्रणाम किया एवं फफक–फफक कर रोने लगी। आराध्यदेव ने उसे अपने गले से लगा लिया एवं अपनी धोती के कोर से उसके आँसू पोंछते हुए बोले, 'लल्ली! मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। योगी बच्चे रोते नहीं हैं।' श्रीमती कमलेस ने रोते हुए कहा कि गुरुदेव अब आप हमसे स्थूल रूप से दूर तो हो ही जायेंगे। ऐसी कृपा करो गुरुदेव की कम से कम पूरे साल में एक सप्ताह का आपका योग प्रचार उस शहर में होता रहे, जहाँ मेरी ससुराल है। अपनी लाड़ली के प्यार में श्री मुख ने हामी भर दी। तदनन्तर श्रीमती कमलेश अपने ससुराल चली गयी।

"आज बिहार प्रान्त का सम्पूर्ण योग प्रचार कार्यक्रम हमारी आदरणीया गुरु बहन

कमलेश के गुरुप्रेम की अमर कहानी कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है।'

बारात विदा होने के बाद, आराध्यदेव श्री अपने प्रिय शिष्य जागरनाथ जी से विदा होकर, श्री सवाई धाम जाने के लिए लाला रामधन दास जी के साथ उनके मकान पर आ गये। श्री रामधन जी ने काफी मात्रा में फल मँगा लिये थे। आराध्यदेव जी ने सभी फलों को स्वच्छ जल से धुलवाया एवं महाप्रभु जी को भोग लगाया। घर में उपस्थित सभी सदस्यों को अपने कर-कमलों से प्रसाद वितरित किया। श्री महाप्रभु जी को छोटे बक्स में रखा, थोड़ा प्रसाद अपने लिये रखा और श्री रामधन जी के साथ स्टेशन पहुँच गये। श्री रामधन दास जी ने टिकट खरीद कर श्री गुरुदेव भगवान को दिया एवं आराध्यदेव का आसन लगाकर उन्हें विराजमान कराया। जब गाड़ी छूटने को हुई तो आराध्यदेव जी ने गाड़ी से उतरने का आदेश दिया। श्री रामधन दास जी ने श्री चरणों में प्रणाम निवेदित किया। श्री मुख ने आशीर्वाद देने के बाद कहा, 'तुमने नि:स्वार्थभाव से मेरी खूब सेवा की है। तुम्हारा यह मकान बस्ती से दूर एकान्त में स्थित है। इसे बेचकर, शहर में अच्छी जगह देखकर जमीन खरीद लो एवं वहाँ आधुनिक सुविधाओं से युक्त नया मकान बना लो तो अच्छा रहेगा। यदि नया मकान बनाना तो उस मकान के गृह प्रवेश के समय मुझे भी बुलाना। मैं अवश्य ही गृह प्रवेश के उत्सव में सम्मिलित होऊंगा।' लाला रामधन जी ने, जी भगवन् कहकर आज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने फिर प्रणाम किया, श्री मुख ने आशीर्वाद दिया। इस प्रकार श्री रामधन अग्रवाल जी अपने घर पहुँच गये एवं हमारे आपके भाग्य विधाता त्रिलोकी नाथ श्री सद्गुरुदेव जी महाराज सिद्ध सेवित श्री सवाई धाम को प्रस्थान कर गये।

बेचारे रामधन दास अग्रवाल जी को क्या पता कि नया मकान बनाकर उसमें रहने का आदेश देने वाले और कोई नहीं बल्कि कालचक्र, युगचक्र और जगचक्र को एक साथ चलाने वाले अवतारी पुरुष स्वयं नारायण ही है। साथ ही उनकी कोई भी आज्ञा अकारण नहीं होती। उन्होंने आराध्यदेव की आज्ञा पालनार्थ कोई प्रयत्न नहीं किया। ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गये। बारहवें वर्ष के प्रारम्भ में ही इनके परिवार पर विपत्तियों का पहाड़ गिर पड़ा।

रात्रि के सवा बारह बजे थे। श्री रामधन जी अपने मकान में अपनी धर्मपत्नी एवं बाल-गोपालों के साथ गहरी नींद में सो रहे थे। करीब अट्ठाइस-तीस की संख्या में लुटेरे बन्दूक, भाले, गड़ासे, लाठी डंडे एवं अन्य प्राणलेवा घातक हथियारों से लैस होकर इनके मकान पर धावा बोल दिये तथा मकान का मुख्य दरवाजा तोड़ने लगे। साथ ही वे सब मकान की छत और आंगन में खतरनाक बम, हथगोले एवं फटने पर अग्नि उगलने वाले वस्तुओं की बौछार करना आरम्भ कर दिये। मकान को चारों तरफ से घेर रखा था और किसी प्रकार मकान से बाहर निकलना सम्भव नहीं था। मकान के अन्दर रहने का अर्थ था मृत्यु। उर प्रेरक श्री गुरुदेव की कृपा से इन्हें उनकी याद आ गयी। इस समय तक इनके परिवार के सभी सदस्य जग कर एक कोठरी में जिसमें एक छोटी सी खिड़की थी, एकत्र थे। श्री रामधन जी ने कहा कि

मैं जो कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो एवं उसे दुहराओ। श्री रामधन जी ने कहा, 'हे कमलेश के गुरुदेव! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो। हे भगवन्! आपके अलावा मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। हम लोग आपकी शरणागत हैं, मेरी रक्षा की जाय, मेरी रक्षा की जाय। त्राहि माम् – त्राहि माम्।'

कातर ध्वनि से उपरोक्त प्रार्थना करते ही आंगन एवं छत पर सामान गिरने की आवाज बन्द हो गयी एवं मुख्य दरवाजा तोड़ने की आवाज भी बन्द हो गयी। श्री रामधन जी ने थोड़ी खिड़की खोलकर बाहर का नजारा देखा तो उनकी आँखें खुली की खुली रह गयी। अग्रवाल जी ने स्पष्ट देखा कि मकान के मुख्य दरवाजे से मात्र दस–बारह कदम की दूरी पर अजेय योद्धा की तरह हमारे गुरुदेव दोनों पैरों में एक फीट की दूरी बनाये सतर्क खड़े हैं। लूटने वाले उन्हें निशाना बनाकर उन पर बम, हथगोलो एवं आग उगलने वाले हथियारों का प्रहार कर रहे हैं। उनके हाथ तो दो ही दिखलायी दे रहे हैं परंतु यदि आठ–दस बम गोले उनकी तरफ आते हैं तो वे लपक कर क्रिकेट गेंद की तरह उन्हें पकड़ लेते हैं, उस समय उनके दस हाथ हो जाते हैं। पाँच बार एक साथ आते हैं तो उनके पाँच हाथ एवं बारह तरफ से बम से उन्हें मारने के लिए बम से प्रहार किया जाता है तो उनके बारह हाथ हो जाते हैं एवं वे सब बमों को पकड़ कर कभी अपने कुर्ते के दायें पॉकेट में तो कभी बायें पॉकेट में रखते हैं एवं कभी दायें रख रहे हैं। उनके पूरे शरीर से झिलमिल प्रकार की किरणें निकल रही है जिसके कारण घोर अंधेरी रात में अनाथनाथ स्पष्ट दिखलायी दे रहे हैं। इसी समय श्री रामधन जी ने अपनी पत्नी सहित बच्चों को कहा, देखो! कमलेश के श्री गुरुदेव एवं हमारे भगवान आ गये हैं। यहीं जमीन पर लेट कर साष्टांग प्रणाम करो। सबके साथ उन्होंने भी साष्टांग प्रणाम किया। इसी समय बायें हाथ से प्रहार रोकते हुए मात्र चन्द सेकेन्डों के लिए गुरुदेव अपनी अमृत वर्षायनी आँखों से देखते हैं और आशीर्वाद की मुद्रा में दाहिनी हाथ करते हुए मुखारविन्द से कहते हैं, 'लल्ला गोपाल! मैं आ गया हूँ। कोई भी तेरा बाल–बाँका नहीं कर सकता।'

इसी समय, आँखों को चकाचौंध करने वाली तेज लाइट दूर से आकर सभी लुटेरों पर पड़ती है एवं दिखलाई देता है कि दरवाजे के सामने लगभग पन्द्रह लुटेरें हैं और सभी गुरुदेव को अपने–अपने हथियारों से मारने का प्रयत्न कर रहे हैं। तीव्र रोशनी को देखकर वे सब आपस में कहते हैं, जल्दी भागो–जल्दी भागो, सैकड़ों मिलिट्री वाले आ गये। भागते समय उनकी संख्या तीस के लगभग दिखलायी देती है। उन सबों के चले जाने के बाद, लाला जी दरवाजा खोलकर श्री गुरुदेव को प्रणाम करने सभी पारिवारिक सदस्यों के साथ दौड़कर जब गुरुदेव के पास पहुँचने का प्रयास करते हैं तो वे वहाँ से अन्तर्धान हो जाते हैं। उसके बाद वे पूरे परिवार के साथ रात भर जगते रहे एवं श्री गुरुदेव भगवान की शक्ति एवं सामर्थ्य का वर्णन करते हैं। सवेरे उठकर स्नानादि कार्य से निवृत्त होकर श्रीमती कमलेश के घर जाते हैं, उसी के यहाँ नाश्ता पानी करते हैं। उससे गुरुदेव कृपाओं का वर्णन करते हैं तथा उसी से श्री सवाँई धाम का पता प्राप्त

कर, श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में श्री सिद्धगुफा सवाँई पहुँच जाते हैं।

श्री रामधन अग्रवाल जी की गाड़ी प्रातः पाँच बजे ही स्टेशन पर पहुँच जाती है। वे स्टेशन पर ही नित्य क्रिया, स्नान और दैनिक पूजा–पाठ से निवृत्त होकर प्रातः सात बजे के लगभग पूछल–पाछल योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम पहुँच जाते हैं। सड़क से ही अपने पूर्व भगवन् को श्री गुरुभवन के सामने आरामकुर्सी पर विराजमान देखते हैं एवं तत्काल सड़क पर ही साष्टाँग प्रणाम करते हैं। आराध्यदेव इन्हें सड़क पर साष्टाँग प्रणाम करते देख लेते हैं एवं आरामकुर्सी से उठकर इनकी तरफ तेजी से आते हैं। श्री सिद्धगुफा एवं कुए के बीच भक्त और भगवान का मिलन होता है। श्री अग्रवाल जी साष्टाँग प्रणाम करते हैं एवं करुणा करुणालय गुरुदेव भगवान उठाकर उन्हें अपनी छाती से लगा लेते हैं। आराध्यदेव इन्हें लेकर आते हैं और इन्हें बैठने का आदेश देकर आराम कुर्सी पर बैठते हैं एवं अपने श्री मुख से पूछते हैं, 'गोपाल! सब कुशल तो है?' श्री अग्रवाल जी का गला अवरुद्ध हो जाता है और वे सिसकते हुए हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं, 'भगवन! हमारी कुशलता एवं रक्षा आपकी अहेतुकी कृपा पर पूर्णतया निर्भर है।' इतना कहकर वे सिसक–सिसक कर रोने लगे। आराध्यदेव जी ने अपने कुर्ते से उनके आँसू पौंछे एवं बोले, 'गोपाल! योगियों के बच्चे रोते नहीं।' उन्हें सामान्य स्थिति प्राप्त होने पर उनसे समाचार सुना। उनके मुँह से लुटेरों द्वारा रक्षा का विस्तृत विवरण सुनकर बीच–बीच में श्रीमुख से कहते रहे, अच्छा ऐसा हुआ। श्री रामधन जी ने कहा, 'बारह साल पूर्व ही आपकी आज्ञा मान लिया होता तो इस विपत्ति से बच जाता। कृपया धनबाद शहर के अच्छे इलाके में जमीन मिलने तथा मकान बनने का प्रसाद देने की कृपा की जाय।' आराध्यदेव जी ने उसी समय प्रसाद दे दिया। लाला जी ने घर वापस जाने की बात कही तो श्री मुख ने कहा, 'गोपाल! पहले तो भोजनालय में जाकर अपने भाई–बहनों के साथ प्रसाद ग्रहण करो तथा लम्बी यात्रा से आये हो पूर्ण आराम करो। आज एवं कल घर जाने का नाम मत लेना। परसों घर जाने के सम्बन्ध में बात करना। दो दिन रात आश्रम पर निवास एवं आरती पूजन तथा भाई बहनों से प्रभु कृपाओं का वर्णन सुनो एवं सुनाओ।

तीसरे दिन इन्होंने घर जाने की आज्ञा माँगी। श्री गुरुदेव भगवान से आज्ञा एवं प्रसाद लेकर जब यह धनबाद की यात्रा पर निकले, श्री मुख ने मधुर मुस्कान के साथ कहा, 'गोपाल! नये मकान के गृह–प्रवेश के समय हमें बुलाना भूल मत जाना।' आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि उस समय तक मूल रूप से इनकी दीक्षा नहीं हुई थी। नया मकान तैयार हो जाने पर श्री गुरुदेव को गृह प्रवेश के उत्सव में उपस्थित रहने की प्रार्थना करने सपत्नीक आश्रम आये एवं श्री गुरुदेव भगवान से विधिवत् योग दीक्षा प्राप्त की। गृह–प्रवेश के बाद प्रत्येक वर्ष लगभग एक सप्ताह तक इनके मकान में निवास करते हुए, लिलावसान के वर्ष तक श्री गुरुदेव भगवान ने योग का प्रचार–प्रसार किया। श्री गुरुसेवा करने से होने वाले पुण्य ने कमाल कर दिया।

अपने आदरणीय गुरुभाई लाला रामधन दास जी अग्रवाल पर हुए, इस चमत्कारी कृपा

प्रसंग को मनोगत करने के बाद, बार–बार यह प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों हुआ। अनन्य मनन एवं चिन्तन करने के बाद, योग–योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण चन्द के मुखारविन्द की यह अमोघ वाणी, जिसे उन्होंने महात्मा श्री अर्जुन को समझाते हुए कही है, स्मरण आती है –

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

(2/40)

श्री गीता जी के दूसरे अध्याय में योगेश्वर श्री कृष्ण ने कर्मयोग की महिमा का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया है कि हे अर्जुन! इस कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं होता एवं फलरूप दोष भी नहीं मिलता। साथ ही इस कर्म योगरूप धर्म का थोड़ा सा भी साधन जन्म–मृत्युरुप महान भय से रक्षा कर लेता है।

आदरणीय श्री रामधन लाल जी ने, हमारे आराध्यदेव जी की; जो कि एक पूर्णयोगी हैं, निःस्वार्थभाव से सेवा की थी; अतः उन पर उपरोक्त अमोघ कृपा वर्षा हुई। सुधी पाठकों को इस रहस्य का स्पष्टतया बोध हो गया होगा कि इससे पूर्व श्री रामधन लाल जी को इस तथ्य की पूरी जानकारी नहीं थी। आध्यात्मिक शास्त्रों में अनेकानेक, प्रसंगों में वर्णन मिलता है कि जीव मात्र किसी भी प्रकार से ईश्वर या पूर्ण योगी के सम्पर्क में आ गया तो उसका परम कल्याण हो ही जाता है। हमारे योगेश्वर द्वय के सम्पर्क में आने वाले योगी हरिहरानन्द जी, श्री हरिहर राय जज जी, श्री मती विजना, श्री मती द्रोपती बुआ जी, व्यभिचारिणी रामरती जी, श्री संसार सिंह, ठाकुर राजकुमार सिंह, माँ देव्याव देवी के मुख्य पुजारी श्री खेमराज जी, श्री नेमिशारण्य पुण्य क्षेत्र के महंथ का प्रिय शिष्य श्री रामसेवक जी एवं मशहूर वेश्या मधुबाला; जो योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अहैतुकी कृपा से उच्चकोटि की योग साधिका बन गयी, इस रहस्य के चश्मदीद गवाह हैं। मोटे तौर पर भी यह बात समझी जा सकती है कि जलती हुई अग्नि के सम्पर्क में जो भी आयेगा, चाहे ज्ञानी हो या मूर्ख; करोड़पति हो या कंगाल और निर्जीव हो या सजीव अग्नि सबको जलाकर राख कर ही देगी। यही कारण है कि सभी आध्यात्मिक–शक्तियाँ के सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। अपने योगेश्वर द्वय की प्रार्थना में चन्द लाइनों के साथ प्रसंग विश्रामित है।

योगेश्वर प्रभु रामलाल तुम पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हो।
प्रभु चन्द्रमोहन के ही आधार, हम सबके ही तू ईश्वर हो।।

और मेरे श्री गुरुदेव के लिए

प्रभु रामलाल की अमर निधि, सब योगियों के अधिनायक हैं।
हम बुरे–भले जैसे भी हैं, हम सबके वे अभिभावक हैं।।

स्वास्थ्य

योग – आसन

ताड़ासन

खड़े होकर करने के आसन में एक ताड़ासन होता है।

विधि :–

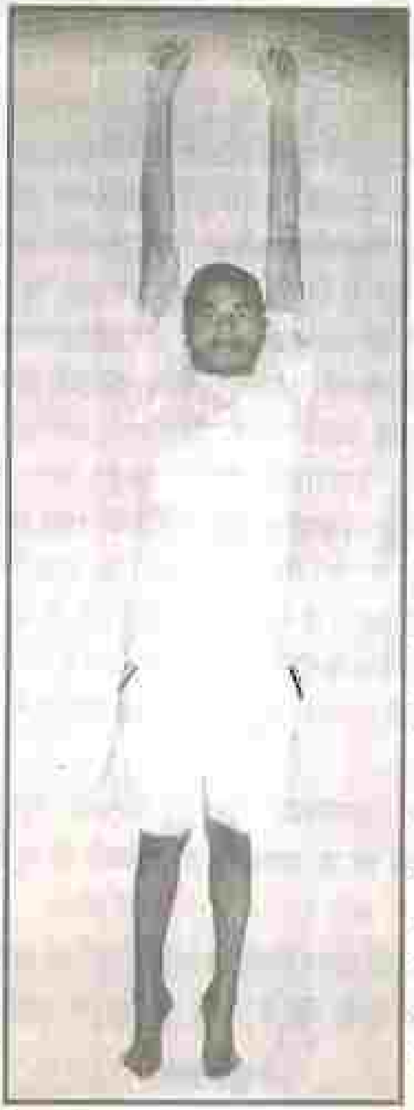

समकाय
सीधे एक स्तर में खड़े हो
भाग एवं कमर के ऊपर का
एक सूत्र बद्ध से हो जिस
वृक्ष होता है। पहिले–पहिले
के लिए किसी दीवार या
अवलम्बन लिया जा
दिन अनवरत अभ्यास
समस्थिति में खड़े होने का
सीधे खड़े हो जाने के बाद
(दाहिनी या बायीं को)
कन्धे के बराबर ले जाकर
फैलाओ वह पूरी–पूरी
साथ ही दूसरी भुजा शरीर
शरीर से बिल्कुल सटी रहे।
जाकर अपनी भुजा को
अपने पैरों की एड़ियों को
केवल पैरों के पंजों पर खड़े
फैलाये हुए हाथ की
बाँध ले व खोल दें–ऐसा
के बराबर फैलाई हुई भुजा
को ले जाये व तनाव से
से बढ़ाते रहें जैसे कोई

शिरोग्रीव होकर बिल्कुल
जाइये, शिर, ग्रीवा, नितम्ब
पीठ का हिस्सा बिल्कुल
प्रकार ताड़ या खजूर का
अभ्यास में समसूत्रता लाने
सीधे खड़े हुए स्तम्भ का भी
सकता है। उसके बाद कुछ
करने पर अपने आप ही
अभ्यास पड़ जायेगा। ऐसे
अपनी एक भुजा को
सावधानी से उठाकर अपने
फैला दें। जिस भुजा को
तनाव में रहनी चाहिए व
के साथ नीचे की ओर
ज्यों ही कन्धों के बराबर ले
फैलाओ त्योंही साथ–साथ
धीरे ऊपर की ओर उठाकर
रहें, कन्धे के बराबर
मुट्ठियाँ एक या दो बार
करने के बाद अपनी कन्धे
को सिर के बराबर ऊपर
ऊपर की ओर उस हरकत
फल तोड़ने को बढ़ाते हैं।

उधर नीचे पैरों की एड़ियों को पूरी-पूरी ऊपर की ओर उठा दें। ऊपर बढ़े हाथ की मुट्ठियाँ पूर्ववत एक या दो बार खोलते व बाँधते रहें। मुट्ठी बाँधना व खोलना दो – एक बार ही करें। लम्बा समय न लगायें। फिर सावधानी के साथ इस भुजा को उसी तनाव के साथ नीचे की ओर ले आयें व अपने शरीर के साथ सटा कर खड़े रहें। ज्योंही भुजा नीचे की ओर जायेगी त्यों ही पैरों की एड़ियाँ भी साथ ही साथ नीचे आ जायेंगी। अब आप पूर्ववत सम अवस्था में आ गए। इसके बाद दूसरी भुजा का भी अभ्यास इसी प्रकार करें व फिर समस्थिति में आकर पुनः दोनों भुजाओं को एक साथ ऊपर को उठाओ व कन्धों के पास ले जाकर फैलाओ व इसके बाद दोनों ही भुजाओं को पूर्ववत ऊपर खूब तनाव के साथ ले जाओ फिर उसी प्रकार शनैः-शनैः समस्थिति में आ जाओ। इसी का नाम ताड़ासन है।

लाभ :–

इस आसन के करने से छाती की व कमर की माँस ग्रन्थियों पर खिंचाव पड़ता है। पैरों की एड़ियाँ उठाने से दोनों पैरों की पिण्डलियों व जंघाओं पर व मलमूत्र का विसर्जन करने वाली नाड़ियों पर व ऊपर की ओर दोनों भुजाओं का तनाव होने से दोनों भुजाओं पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ता है। अतः इस आसन के करने से हृदय व फेफड़ों को पूरा-पूरा बल मिलता है। आँतें अपना काम ठीक-ठीक करने लगती हैं। कोष्ठ बद्धता आदि रोग व मूत्राशय सम्बन्धी रोगों में पूरा लाभ पहुँचता है। इसके साथ-साथ शरीर पर बराबर तनाव पड़ने से शरीर मान को बढ़ाता है। (अर्थात् लम्बाई बढ़ती है।)

शोक समाचार

यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि जौनपुर निवासी हमारे पुराने गुरु भाई **राम अधार लाल श्रीवास्तव** का 15 नवम्बर को देहावसान हो गया है। ये गुरुदेव के पुराने व लाड़ले शिष्यों में से थे।

इनके निधन पर सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है। श्री प्रभु जी दुःखी बच्चों को दुःख सहने की शक्ति दें।

जय गुरुदेव।

– सम्पादक सिद्धयोग

श्री गीतामृत – पदावली

अध्याय – 10

श्रीभगवानुवाच

फिर भी, महाबाहु! तुम सुन लो मेरी सर्वश्रेष्ठ यह बात।
इसमें तुम्हें प्रीति है, इससे तव हित में यह कहता तात।।1।।

सुर, मुनिवर भी नहीं जानते, अर्जुन! मेरा दिव्य प्रभव।
देव, महर्षि सभी का मैं हूँ आदि, सुनो, हे नरपुंगव।।2।।

अज, अनादि मैं लोक–महेश्वर – ऐसा जिसको मेरा ज्ञान।
मोह–रहित वह मानव, अर्जुन! पाता है पापों से त्रान।।3।।

बुद्धि, ज्ञान औ' मोह–हीनता, क्षमा, सत्य औ' आत्म–दमन।
जन्म मरण सुख-दुःख, अभय–भय तथा चित्त का पूर्ण शमन।।4।।

तप, संतोष, अहिंसा, समता, यश–अपयश औ' देना दान।
पृथक्–पृथक् ये भाव सभी के मुझसे ही होते, तू जान।।5।।

सप्त महर्षि तथा मनु चौदह, और पूर्व के वे भी चार।
इन मानस पुत्रों ने मेरे, जग में किया सृष्टि विचार।।6।।

तत्व–सहित जिन्होंने जानी मेरी यह विभूति औ' योग।
अचल योग निश्चय ही, अर्जुन! पा लेते हैं ऐसे लोग।।7।।

आदि सभी का हूँ मैं ही, सब विस्तृत मुझसे ही जान।
भावयुक्त वे भजते रहते, जिन पुरुषों को, अर्जुन! ज्ञान।।8।।

एक–दूसरे को समझाते, चित्त, प्राण मुझमें धरते।
रमण सदा मुझमें ही करते, यश मेरा गाया करते।। 9।।

योग युक्त होकर वे मुझमें, प्रेम–सहित भजते रहते।
उनको बुद्धि–योग मैं देता, मुझको हैं वे पा लेते।। 10।।

पूर्ण दया करके मैं, अर्जुन! उनके मन में करता वास।
औ' उनके अज्ञानज तम का, ज्ञान–दीप से करता नाश।। 11।।

अर्जुन उवाच
पर ब्रह्म हो, धाम परम हो, पावन, सबसे परे, महान्।
पुरुष सनातन, आदिदेव हो, जन्म–रहित, व्यापक भगवान्।। 12।।

सब ऋषियों ने यह बतलाया, नारद ने भी कहा यही।
असित, व्यास, ऋषि देवल ने औ', तुमने भी तो कहा वही।। 13।।

सत्य समझता हूँ मैं केशव! जो–कुछ तुमने कहा यहीं।
देव, दनुज को भी तो भगवन्! व्यक्ति तुम्हारी ज्ञात नहीं।। 14।।

अपने को तुम स्वयं जानते, हे पुरुषोत्तम, जग–स्वामी।
जीवमात्र के सृष्टा स्वामी देवदेव, अन्तर्यामी।। 15।।

अपनी ये विभूतियाँ केशव! मुझको बतला दो सम्पूर्ण।
जिनसे व्याप्त किया है तुमने अखिल विश्व, भूमण्डल पूर्ण।। 16।।

कैसे चिन्तन करते–करते, योगीराज तुम्हें लूँ जान।
किन–किन भावों में, हे भगवन्! धरना उचित तुम्हारा ध्यान।। 17।।

अपना योग, विभूति, जनार्दन! मुझसे कहो सहित विस्तार।
अमृत-वचन तव सुनकर मुझको तृप्ति न होती, जगदाधार।। 18।।

श्री भगवानुवाच

निज विभूतियाँ दिव्य तुम्हें अब मुख्य-मुख्य मैं बतलाता।
कहता हूँ थोड़े में, उनका अंत नहीं कोई पाता।। 19।।

सबके भीतर रहने वाला मैं हूँ आत्मा अमर अनन्त।
आदि-मध्य हूँ मैं सबका ही, तथा सभी का हूँ मैं अन्त।। 20।।

आदित्यों में विष्णुदेव हूँ, ज्योतिगणों में सूर्य प्रखर।
मैं मरीचि हूँ मरुतों में औ' नक्षत्रों में हूँ शशधर।। 21।।

क्रमशः

श्री रामलाल प्रभवे नमः | सद्गुरुदेवाय नमः

श्री रामनवमी महोत्सव व श्री प्रभु जी की जयन्ती

सभी गुरुभाइयों / बहिनों को यह सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज का प्राकट्य दिवस योग महामेला के रूप में 30, 31 मार्च व 1 अप्रैल तद्नुसार शुक्रवार, शनिवार व रविवार को बड़े ही धूम धाम से श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम में मनाया जा रहा है। चैत्र नवरात्रारम्भ 23 मार्च से प्रारम्भ हो रहा है।

सभी श्रद्धालु गुरुभाई बहिनों से निवेदन है कि उक्त तिथियों में सवाँई धाम में आकर सत्संग लाभ लें तथा पुण्य के भागी बनें। जय गुरुदेव की !

इसे ही आमन्त्रण पत्र समझें।

प्रार्थीगण

आश्रमवासी साधक

श्री सिद्धगुफा सवाँई, आगरा

... बार-बार बलिहारी

– जगदीश राए बसंल ''अधम'', नई दिल्ली

सवांई छोड़ हिमालय जाना, क्या क्या लीला दिखाई,
प्रभू जी तुम्हें बार बार बलिहारी।

सवांई बैठे महा प्रभू जी, योग का प्रचार किया,
योग शक्ति दिखाओ बाबा, दो भक्तों ने हठ किया
आसमां में देखो लल्ला, त्रिलोकी ने संकेत किया,
सके विराट रूप सह ना वो, ...ओ...ओ...ओ
विराट रूप सह ना सके वो, त्राही–त्राही मचाई।
प्रभू जी ... (1)

प्रभू जी ने मन में ठानी, हम हिमालय जाएंगे
मिलेंगे जो जो योगी भोगी, वो दीक्षा हम से पाएंगे।
भक्तों में हलचल मचेगी, बाबा कहीं पर जाएंगे,
गुलाब भक्त को आगे ले के, ऐ... ऐ... ऐ...
गुलाब भक्त को आगे ले के, करी प्रार्थना प्यारी प्यारी
प्रभू जी ... (2)

गुफा के अन्दर लल्ला हमको, लम्बी समाधी लगाना है
बाहर से ताला बन्द करो, तुमको धीरज धरना है
अणीमा से बाहर आकर स्थूल रूप बनाया है

सूखा धीमर हल चलावे, ऐ ... ऐ ... ऐ ...
सूखा धीमर हल चलावे, जान लभी पै आई।

प्रभू जी ... (3)

दाता जी भूहल उतरे, मैं गुफा वाला बाबा हूँ
नहीं कहना गांव जाकर, मैं हिमालय जाता हूँ।
सूखा भाग भाग चिल्लाया, मैं बाबा का दर्शन पाया हूँ
भक्त ज्वाला नीचे उतरा, आ ... आ ... आ ...
भक्त ज्वाला नीचे उतरा, गुफा थी खाली पाई।

प्रभू जी ... (4)

जाते जाते मार्ग में कितने भक्तों को वरदान दिया,
वे महायोगी देवराह बाबा, उनको खेंचरी सिद्ध किया।
'गया' जाकर वाम मार्गी के, भैरव चक्र नष्ट किया,
नर्मदा मन्दिर उद्धार करके, ऐ ... ऐ ... ऐ ...
नर्मदा मन्दिर उद्धार करके, हरी हरा नन्द जी अपनाई।

प्रभू जी ... (5)

जमुनियाँ तट गंगा पै, पिता पुत्र ने विचार किया,
मर जाएँ या मार डालेंगे, प्रभू जी को वरदान किया
एक व्यभीचारिणी पुत्री ने, हमको है लाचार किया
रामरति को माँ दुर्गा बनाया, आ ... आ ... आ ...
राम रति को माँ दुर्गा बनाया, ये 'अधम' के रखवारी।

प्रभू जी ... (6)

स्वस्थ रहने की रामबाण दवा

(साभार कल्याण से)

(3) तेज – तेज का पर्यायवाची शब्द अग्नि या ऊष्मा है। जब तक प्राणी जीवित है तब तक शरीर में गरमी रहती है। मृत्यु होने पर शरीर ठंडा हो जाता है। जीवन के साथ तेज या ऊष्मा का तथा सूर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्य की गरमी से प्रकृति प्राणिमात्र के लिए फल–फूल, कन्द–मूल आदि पकाती है। सूर्यकिरणों में जन्तुनाशक गुण भी है। विभिन्न रोगों में सूर्य किरण–चिकित्सा भी की जाती है। स्वास्थ्यलाभ की दृष्टि से प्रातःकाल तथा सायंकाल में जब किरणों में गरमी कम होती है तब सूर्य का सेवन खुले बदन करना हितकर है। अतः तेज भी जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

(4) जल – मानव को जल की प्रचुर आवश्यकता है। मनुष्य के आहार में ठोस पदार्थ कम और तरल पदार्थ अधिक मात्रा में रहता है। स्नान, भोजन, स्वच्छता और सफाई–सभी कार्य जल के बिना सम्भव नहीं हैं। पशुपालन, खेती–बारी आदि सभी कार्य जल पर ही निर्भर करते हैं। अतः जल ही जीवन है।

(5) पृथ्वी– पृथ्वी माता की गोद में हम जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर रहते हैं। पृथ्वी अर्थात् मिट्टी में आकाश, वायु, जल तथा सूर्य के सहयोग से अन्न, फल, मूल, वनस्पति और औषधियों आदि की उत्पत्ति होती है और इसी से सभी प्राणियों का भरण–पोषण तथा रोगों की चिकित्सा होती है। मिट्टी के विभिन्न प्रयोगों से अनेक रोगों की चिकित्सा होती है। मिट्टी की पट्टी प्रायः सभी रोगों में उपयोगी है।

यह शरीर पंचमहाभूतों से बना है इसलिए प्रकृति में आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी–तत्व की प्रचुरता है। जिससे प्राणी मुक्त भाव से उनका उपयोग करके नीरोग और स्वस्थ रह सके।

कल्याणकामी मनुष्य के लिए आयुर्वेदशास्त्र के अन्त में कुछ उपदेश प्रदान किये गये हैं–

मानव को सभी प्रकार के पापों से बचना चाहिए। हितैषी मित्रों को समझना तथा वंचक मित्रों से दूर रहना चाहिए। अभावग्रस्त, रुग्ण एवं दीनजनों की सहायता करनी चाहिए। क्षुद्रातिक्षुद्र (चींटी) आदि प्राणियों को अपने समान समझना चाहिए। देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथि का सतत सत्कार करना चाहिए। याचकों को विमुख नहीं जाने देना चाहिए और कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। अपकार करने वाले का भी निरन्तर उपकार करने की ही भावना रखनी चाहिए। फल की कामना से निरपेक्ष रहकर

सम्पत्ति और विपत्ति में सदा समबुद्धि रखनी चाहिए। उचित समय पर अति संक्षेप में किसी से भी हितकर बात कहनी चाहिए – 'काले हितं मितं ब्रूयात्'। मनुष्य को करुणार्द्र, कोमल, सुशील तथा संशयरहित होना चाहिए तथा किसी पर अत्यन्त विश्वास भी नहीं करना चाहिए। किसी को अपना शत्रु मानना तथा किसी से शत्रुता करना दोनों अच्छे नहीं हैं। सदैव सबसे विनम्र व्यवहार करना चाहिए। व्यर्थ में हाथ–पैर हिलाना, लगातार सूर्य की ओर देखना तथा सिरपर भार ढोना आदि कार्य न करें, अत्यन्त चमकीली वस्तुओं की ओर देर तक नहीं देखना चाहिए, इससे अन्धत्व आने का भय होता है। सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सोना, भोजन तथा स्त्रीगमन आदि कार्य करना निषिद्ध है। हानिप्रद पेय नहीं पीना चाहिए। किसी भी कार्य में अति नहीं करनी चाहिए – ***'अति सर्वत्र वर्जयेत।'***

बुद्धिमान् व्यक्ति को दूसरों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। समस्त प्राणियों के प्रति दयाभाव तथा सत्पात्र को दान देने की भावना रखनी चाहिए। हिंसा, चोरी, पिशुनता, कठोरता, झूठ, दुर्भावना, ईर्ष्या, द्वेष आदि पापों से तथा शरीर, मन और प्राणी के द्वारा किसी भी प्रकार के पापों से बचना चाहिए। अन्यथा व्याधिरुप से उनका दण्ड भोगना पड़ता है।

संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि जीवन के उत्कर्ष के लिए तथा अपने कल्याण के लिए आचारधर्म अर्थात् सदाचार का पालन ही मनुष्य का मुख्य धर्म है – 'आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः' (विष्णुसहस्त्रनाम श्लोक 137)। जिसका अनुशीलन कर व्यक्ति अनेकानेक आपदाओं, रोगों, अभिचारों से सुरक्षित रहकर पूर्ण आरोग्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी को प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है।

जो व्यक्ति सदैव हितकर आहार–विहार का सेवन करता है, सोच–समझकर कार्य करता है, विषयों में आसक्त नहीं होता, जो दानशील, समत्व बुद्धि से युक्त, सत्यपरायण, क्षमावान्, वृद्धजनों की सेवा करने वाला है, वह नीरोग होता है –

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

(चरक)

मन, बुद्धि और चित्त जिसका स्थिर है, ऐसा प्रसन्नात्मा व्यक्ति ही स्वस्थ है–

'प्रसन्नात्मेन्द्रियग्रामो स्थिरधीः स्वस्थमुच्यते।'

ये सभी बातें अथवा विशेषताएँ आचारधर्म के पालन से ही सम्भव हैं और यही स्वस्थ रहने की रामबाण दवा है।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

—श्रीमद्‌भगवद् गीता

तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्रोहहीनता और अपने मान–सम्मान के अभिमान का अभाव–ये सब तो हे अर्जुन! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

हम इस संसार में खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ ही जाते हैं, यह सभी जानते हैं, पर यह भौतिक स्थिति है। जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि में हमारे हाथों में भौतिक पदार्थ आते रहते हैं, इसलिए खाली हाथ वाली हमारी धारणा सही मालूम होती है पर असल बात कुछ और ही है। वास्तव में न हम खाली हाथ आते हैं और न खाली हाथ जाते हैं। हमारे स्थूल शरीर वाले हाथ ही खाली होते हैं बाकी सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म हाथ तो हमारे द्वारा पूर्व जन्मों में अभुक्त कर्मों के फल से भरे हुए रहते हैं और जब इस जन्म में शरीर छोड़ते हैं तब भी हमारे सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म हाथ खाली नहीं होते, पिछले कर्मों में शेष बचे कर्म और इस जन्म में किए गये शुभाशुभ कर्म हमारे हाथों में होते हैं। जिनके हाथों में अच्छे कर्म होते हैं वे दैवी सम्पदा के स्वामी होते हैं।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना।

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा:

1. उत्तम क्वालिटी का मोम आवरण (कवर पत्रम) का विज्ञापन
2. लैटर कॉलमों पर स्थान का आयोजन (व्यक्तिगत)
3. पैन वाहकों पर स्थान का प्रायोजन (प्रायोजित) दर : रु. 1000 प्रति पैकेट प्रतिमाह परिक्रमा भाड़े रु. 100.00 प्रति पैकेट
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 1.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर की अन्दर या बाहर दीवारों पर कोई स्थायी पैनल लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर प्रायोजन कैंसिलेशन की मुहर लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति माह प्रतिदिन कार्ड का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड की सहायता से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन। दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

सिद्धयोग

योग विज्ञान का प्रतिपादक मासिक हिन्दी पत्रिका

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

मौलाई (पदमपुर) आगरा (उ.प्र.)

श्री सुश्री

संरक्षक:- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाम
राष्ट्रीय ऑफसेट एवं प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, मौलाई
आरएनआई नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब.